दिसम्बर १९८९

संशोधन :
डॉ. उदयचन्द जैन

प्रकाशक :

प्राकृत भारती अकादमी
३८२६-यति श्यामलालजी का उपाश्रय,
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जयपुर-३०२००३ (राज.)

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन
९-सी, एस्प्लांनेड रो ईस्ट,
कलकत्ता-७०००६९

श्री जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
पो. मेवानगर-३४४०२५
जिला- बाड़मेर (राज.)

मुद्रक :
पारदर्शी प्रिन्टर्स
२६१, ताम्बावती मार्ग, उदयपुर

AYAR-SUTTAM
By
MAHOPADHYAY
CHANDR PRABH SAGAR

प्रकाशकीय

आगमवेत्ता महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागरजी सम्पादित-अनुवादित 'आयार-सुत्तं' प्राकृत-भारती, पुष्प-६८ के रूप में प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है।

आगम-साहित्य जैन धर्म की निधि है। इसके कारण आध्यात्मिक वाङ्मय की अस्मिता अभिवर्धित हुई है। जैन-आगम-साहित्य को उसकी मौलिकताओं के साथ जनभोग्य सरस भाषा में प्रस्तुत करने की हमारी अभियोजना है। 'आयार-सुत्तं' इस योजना की क्रियान्विति का एक चरण है।

'आयार-सुत्तं' जैन आगम-साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें आचार के सिद्धान्तों और नियमों के लिए जिस मनोवैज्ञानिक आधार-भूमि एवं दृष्टि को अपनाया गया है, वह आज भी उपादेय है। आचारांग की दार्शनिक एवं समाज-शास्त्रीय दृष्टि भी वर्तमान युग के लिए एक स्वस्थ दिशा-दर्शन है।

ग्रन्थ के सम्पादक चन्द्रप्रभजी देश के सुप्रतिष्ठित प्रवचनकार हैं, चिन्तक हैं, लेखक हैं और कवि हैं। उनकी वैदुष्यपूर्ण प्रतिभा प्रस्तुत आगम में सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुई है। अनुवाद एवं भाषा-वैशिष्ट्य इतना सजीव एवं सटीक है कि पाठक की सुप्त चेतना का तार-तार झंकृत कर देती है। प्रस्तुत लेखन 'आयार-सुत्तं' का मात्र हिन्दी-अनुवाद ही नहीं है, वरन् अनुसंधान भी है, जिसे एक चिन्तक की खोज कह सकते हैं।

गणिवर श्री महिमाप्रभसागरजी ने इस आगम-प्रकाशन-अभियान के लिए हमें उत्साहित किया, एतदर्थ हम उनके हृदय से आभारी हैं।

पारसमल भंसाली	प्रकाशचन्द दफ्तरी	देवेन्द्रराज मेहता
अध्यक्ष	ट्रस्टी	सचिव
श्री जैन श्वे. नाकोड़ा	श्री जितयशाश्री फाउंडेशन	प्राकृत भारती अकादमी
पार्श्व. तीर्थ, मेवानगर	कलकत्ता	जयपुर

पूर्व स्वर

'आयार-सुत्त'' भगवान् महावीर की संन्यस्त आचार-संहिता है। इसमें साधक की भीतरी एवं बाहरी व्यक्तित्व की परिपूर्ण झांकी उभरी है। सद्विचार की शब्द-सन्धियों में सदाचार का संचार ही इसकी प्राणधारा है।

'आयार-सुत्त'' जैन परम्परा का अखूट खजाना है। पर यदि इस ग्रन्थ को मात्र जैन श्रमण का ही प्रतिबिम्ब कहा जाए, तो इसके भूमा-कद को बौना करने का अन्याय होगा।

'आयार-सुत्त'' सार्वभौम है। इसे किसी सम्प्रदाय-विशेष की चौखट में न बांधकर विश्व-साधक के लिए मुहैया कराने में ही इस पारस-ग्रन्थ का सम्मान है। इसकी स्वर्णिमता/उपादेयता सार्वजनीनता में है। यह उन सबके लिए है जो साधना के अनुष्ठान में स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करना चाहते हैं।

'आयार-सुत्त'' साधनात्मक जीवन-मूल्यों का स्वस्थ आचार-दर्शन है। यह साधक के अभिनिष्क्रांत कदमों को नयी दिशा दरशाता है और उसकी आंखों को विश्व-कल्याण के क्षितिज पर उघाड़ता है। महावीर की यह कालजयी शब्द-संरचना विश्व-मानव की हथेली पर दीपदान है, जिसके प्रकाश में वह प्रतिसमय दीप्ति और दृष्टि प्राप्त करता रहेगा। 'आयार-सुत्त'' मात्र महावीर की साधनात्मक देशना नहीं है, अपितु उनकी करुणामूलक सहिष्णुता की अस्मिता भी है। वे ही तो अक्षर-पुरुष हैं इस आगम के अनक्षर अक्षरों के।

आगम ज्ञान-तीर्थ है। 'आयार-सुत्त'' प्रथम तीर्थ है। इसका मनन, स्पर्शन और निदिध्यासन आत्म-साक्षात्कार के लिए महत् पहल है। इसके सूत्र-गवाक्षों में से कुछ ऐसे तथ्य रोशन होते हैं जिनमें संसृति-श्रेय की छाया झलकती है।

यद्यपि इसकी अंगुली श्रमण की ओर इंगित है, किन्तु तनाव एवं संताप की लपटों में झुलसते विश्व को शान्ति की स्वच्छ चन्दन-डगर देने में इसकी उपयोगिता विवाद से परे है।

'आयार-सुत्त'' का हर अध्याय साधना-मार्ग का मील का पत्थर है। आठवां अध्याय साधक का आखिरी पड़ाव है। नौवां अध्याय ग्रन्थ का उपसंहार नहीं,

अपितु दर्पण है। साधना-जगत् का चप्पा-चप्पा छानने के बाद महावीर ने जो पगडंडी बताई, वही आठ अध्यायों के रूप में सीधे-सादे ढङ्ग से प्रस्तुत है। इसके छोटे-छोटे सूत्र/सूक्त महावीर की नव्य ऋचाएँ हैं। इनकी उपादेयता कदम-कदम पर अचूक है। महावीर के इन अभिभाषणों में कहीं-कहीं काव्यात्मक धड़कन भी सुनाई देती है। यदि इन सूत्रों से घुलमिलकर बात की जाये, तो इनके पेट की अर्थ-गहराइयाँ उगलवाई जा सकती हैं।

महावीर ने 'आयार-सुत्त' में श्रमण-आचार का जर्रा-जर्रा सामने रख दिया है। सचमुच, यह महावीर के आचारगत मापदण्डों का अद्भुत स्मारक है।

इसका पहला अध्ययन 'जियो और जीने दो' के सांस्कृतिक बोधवाक्य को आँखों की रोशनी बनाकर स्वस्तिकर जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

दूसरा अध्ययन अन्तर-व्यक्तित्व में अध्यात्म-क्रान्ति का अभियान चालू रखने के लिए खुलकर बोलता है।

तीसरा अध्ययन जय-पराजय जैसे उठापटक करने वाले परिवेश में स्वयं को तटस्थ बनाए रखने की सीख देता हुआ साधक को न्याय-तुला थमाता है।

चौथा अध्ययन सोये मानव पर पानी छिटककर उसकी हंस-दृष्टि को उघाड़ते हुए आत्म-अनात्म के दूध-पानी में भेद करने का विज्ञान आविष्कृत करता है।

पाँचवां अध्ययन विश्व में सम्भावित हर तत्त्व-ज्ञान को खूब मथकर निकाला गया नवनीत है, जो आत्मा के मुखड़े को निखारने के लिए सौन्दर्य-प्रसाधन है।

छट्ठा अध्ययन जीवन की मैली-कुचेली चादर को अध्यात्म के घाट पर रगड़-रगड़ कर धुनने/धोने की कला सिखाता है।

सातवां अध्ययन काल-कन्दरा में चिर समाधिस्थ है।

आठवां अध्ययन संसार की सांझ एवं निर्वाण की सुबह का स्वर्णिम दृश्य दरशाता है।

नौवां अध्ययन महावीर के महाजीवन का मधुर संगान है।

'आयार-सुत्त' मेरे जीवन की प्रसन्नता और सम्पन्नता है। मुझे इससे बहुत प्रेम है। जैसा मैंने इसको अपने ढङ्ग से समझा है, उसे उसी रूप में ढाल दिया है। पूर्वाग्रह के प्रस्तरों को हटाकर यदि इसे स्वयं के प्राणों में अनवरत उतरने दिया गया, तो यह प्रयान मुमुक्षु पाठक को अमृत स्नान कराने में इंकलाब की आशा है।

उदयपुर, १४-११-८६

—चन्द्रप्रभ

प्रवेश-द्वार

आयार-सुत्तं : सदाचार का रचनात्मक प्रवर्तन
आगम-क्रम : प्रथम आगम ग्रंथ
प्रवर्तन : भगवान महावीर
प्रस्तुति : आचार्य सुधर्मा एवं अन्य
प्रतिपाद्य-विषय : श्रमण-आचार का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष
रचना-काल : ईसा-पूर्व छठी से तीसरी शताब्दी मध्य
रचना-शैली : सूत्रात्मक शैली
भाषा : अर्धमागधी
रस : शान्त-रस/वैराग्यरस
मूल्य : बौद्धिकता एवं भावनात्मकता
वैशिष्ट्य : अर्थ-प्राधान्य

अनुक्रम

पढमं अज्झयणं

सत्थ-परिण्णा

प्रथम अध्ययन

शस्त्र-परिज्ञा

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'शस्त्र-परिज्ञा' है। शस्त्र हिंसा का वाचक है। परिज्ञा प्रज्ञा का पर्याय है। इस प्रकार यह अध्याय हिंसा और अहिंसा का विवेक-दर्शन है।

इसमें समाज एवं पर्यावरण की समस्याओं का समाधान है। जीव-जगत् के सङ्गठन, नियमन तथा विघटन की सूत्रात्मक परिचर्चा इस अध्याय की आत्म-कथा है।

सर्वदर्शी महावीर ने समग्र अस्तित्व एवं पर्यावरण का गहराई से सर्वेक्षण किया है। प्रस्तुत अध्याय उनकी प्रथम देशना है। इसमें पर्यावरण की रक्षा हेतु सद्विचार के सूत्रों में सदाचार का प्रवर्तन है। उनके अनुसार पर्यावरण का रक्षण अहिंसा का जीवन्त आचरण है। हमारे किसी क्रिया-कलाप से उसे क्षति पहुँचती है, तो वह आत्म क्षति ही है। सभी जीव सुख के अभिलाषी हैं। भला, अपने अस्तित्व की जड़ें कौन उखड़वाना चाहेगा? अहिंसा ही माध्यम है, पर्यावरण के संरक्षण एवं पल्लवन का।

महावीर के विज्ञान में जीव-जगत् की दो दिशाएँ थीं — वनस्पति-विज्ञान और प्राणि-विज्ञान। 'आचार-सूत्र' में इन्ही दो विज्ञानों का ऊहापोह किया गया है। इसमें वनस्पति, प्राणि और मनुष्य के बीच भेद की सीमारेखा अनङ्कित है। पर्यावरण के प्रति महावीर की यह विराट दृष्टि वैज्ञानिक एवं प्रासङ्गिक है।

पर्यावरण और अहिंसा की पारस्परिक मैत्री है। इन दोनों का अलग-अलग अस्तित्व नहीं है, सहअस्तित्व है। हिंसा का अधिकाधिक न्यूनीकरण ही स्वस्थ समाज की संरचना में स्थायी कदम है। भाईचारे का आदर्श मनुष्येतर पेड़-पौधों के साथ स्थापित करना अहिंसा/साधना की आत्मीय प्रगाढ़ता है।

पर्यावरण का अस्तित्व स्वस्थ एवं संतुलित रहे, इसके लिए साधक का जागृत और समर्पित रहना साध्य की ओर चार कदम बढ़ाना है। दूसरों का छेदन-भेदन-हनन न करके अपनी कषायों को जर्जरित कर हिंसा-मुक्त आचरण करना साधक का धर्म है। इसलिए अहिंसक व्यक्ति पर्यावरण का सजग प्रहरी है।

पर्यावरण अस्तित्व का अपर नाम है। प्रकृति उसका अभिन्न अङ्ग है। उस पर मँडराने वाले खतरे के बादल हमारे ऊपर बिजली का कौंधना है। इसलिए उसका पल्लवन या भंगुरण समग्र अस्तित्व को प्रभावित करता है।

हमारे कार्यकलापों का परिसर बहुत बढ़-चढ़ गया है। उसकी सीमाएँ अन्तरिक्ष तक विस्तार पा चुकी हैं। मिट्टी, खनिज-पदार्थ, जल, ज्वलनशील पदार्थ, वायु, वनस्पति आदि हमारे जीवन की आवश्यकताएँ हैं। किन्तु इनका छेदन-भेदन-हनन इतना अधिक किया जा रहा है कि दुनिया से जीवित प्राणियों की अनेक जातियों का व्यापक पैमाने पर लोप हुआ है। प्रदूषण-विस्तार के कारणों में यह भी मुख्य कारण है।

महावीर ने पृथ्वी के सारे तत्त्वों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने अपने शिष्यों को स्पष्ट निर्देश दिया कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, जीव-जन्तु, मनुष्य आदि पर्यावरण के किसी भी अङ्ग को न नष्ट करे, न किसी और से नष्ट करवाये और न ही नष्ट करने वाले का समर्थन करे। वह संयम में पराक्रम करे। उनके अनुसार जो पर्यावरण का विनाश करता है, वह हिंसक है। महावीर हिंसा को कतई पसन्द नहीं करते। उन्होंने सङ्घर्षमुक्त समत्वनियोजित स्वस्थ पर्यावरण बनाने की शिक्षा दी।

प्रदूषण-जैसी दुर्घटना से बचने के लिए पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों की रक्षा अनिवार्य है। इसी प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के प्रदूषणों से दूर रहने के लिए अस्तित्व-रक्षा/अहिंसा अपरिहार्य है।

प्रकृति, पर्यावरण और समाज सभी एक-दूसरे के लिए हैं। इनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए महावीर-वाणी क्रान्तिकारी पहल है। प्रस्तुत अध्याय अहिंसक जीवन जीने का पाठ पढ़ाता है।

पढमो उद्देसो

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—
इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तं जहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अहे वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ।

२. एवमेगेसिं णो णायं भवइ—
अत्थि मे आया ओववाइए,
णत्थि मे आया ओववाइए,
के अहं आसी ?
के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ?

३. से जं पुण जाणेज्जा—
सहसं मइयाए,
परवागरणेणं,
अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा, तं जहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दक्खिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

प्रथम उद्देशक

१. आयुष्मन् ! मैंने सुना है । भगवान् के द्वारा ऐसा कथित है—
इस संसार में कुछ लोगों को यह समझ नहीं है, जैसे कि—
मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या अन्य दिशा से,
अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ,
अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,
अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ,
अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ,
अथवा अधो दिशा से आया हूँ,
अथवा अन्यतर दिशा से या अनुदिशा, विदिशा से आया हूँ ।

२. इसी प्रकार कुछ लोगों को यह ज्ञात नहीं होता है—
मेरी आत्मा औपपातिक है,
मेरी आत्मा औपपातिक नहीं है ।
मैं कौन था ?
अथवा मैं यहाँ कहाँ से आया हूँ और यहाँ से च्युत होकर कहाँ जाऊँगा ?

३. फिर भी वह जान लेता है—
स्वयंबुद्ध होने से,
पर-उपदेश से
अथवा अन्य लोगों से सुनकर । जैसे कि—
मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या अन्य दिशा से,
अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ,
अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,
अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ,
अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ,

अहे वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ।

४. एवमेगेसिं जं णायं भवइ—
अत्थि मे आया ओववाइए ।
जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ,
सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सो हं ।

५. से आयावाई, लोयावाई, कम्मावाई, किरयावाई ।

६. अकरिस्सं च हं, कारवेसुं च हं, करओ यावि समणुण्णे भविस्सामि ।

७. एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्म-समारंभा परिजाणियव्वा भवंति ।

८. अपरिण्णाय-कम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ,
सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेइ,
अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ,
विरूवरूवे फासे य पडिसंवेदेइ ।

९. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

१०. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

११. एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्म-समारंभा परिजाणियव्वा भवंति ।

१२. जस्सेए लोगंसि कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि

अथवा अधो दिशा से आया हूँ,
अथवा अन्यतर दिशा से या अनुदिशा/विदिशा से आया हूँ।

४. इसी प्रकार कुछ लोगों को यह ज्ञात होता है—
मेरी आत्मा औपपातिक है,
जो इन दिशाओं या अनुदिशाओं में विचरण करती है।
जो सभी दिशाओं और सभी अनुदिशाओं में आकर विचरण करती है,
वही मैं/आत्मा हूँ।

५. वही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी है।

६. मैंने क्रिया की, मैंने करवाई और करने वाले का समर्थन करूँगा।

७. ये सभी क्रियाएँ लोक में कर्म-बन्धन-रूप ज्ञातव्य हैं।

८. निश्चय ही, कर्म को न जाननेवाला यह पुरुष इन दिशाओं एवं अनुदिशाओं में विचरण करता है,
सभी दिशाओं और सभी अनुदिशाओं में जाता है,
अनेक प्रकार की योनियों से सम्बन्ध रखता है,
अनेक प्रकार के प्रहारों का अनुभव करता है।

९. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

१०. और इस जीवन के लिए
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

११. ये सभी क्रियाएँ लोक में कर्म-बन्धन-रूप ज्ञातव्य हैं।

१२. जिस लोक में कर्म-बन्धन की क्रियाएँ ज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

बीओ उद्देसो

१३. अट्टे लोए परिजुण्णे, दुस्संबोहे अविजाणए ।

१४. अस्सिं लोए पव्वहिए ।

१५. तत्थ तत्थ पुढो पास, आउरा परितावेंति ।

१६. संति पाणा पुढो सिया ।

१७. लज्जमाणा पुढो पास ।

१८. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

१९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्म-समारंभेणं पुढविसत्थं समारंभेमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

२०. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

२१. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

२२. से सयमेव पुढवि-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढवि-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढवि-सत्थं समारंभंते समणुजाणइ ।

२३. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

२४. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

द्वितीय उद्देशक

१३. लोक में मनुष्य पीड़ित, परिजीर्ण, सम्बोधिरहित एवं अज्ञायक है।

१४. इस लोक में मनुष्य व्यथित है।

१५. तू यत्र-तत्र पृथक्-पृथक् देख! आतुर मनुष्य [पृथ्वीकाय को] दुःख देते हैं।

१६. [पृथ्वीकायिक] प्राणी पृथक-पृथक हैं।

१७. तू उन्हें पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

१८. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं — 'हम अनगार हैं।'

१९. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा पृथ्वी-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

२०. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

२१. और इस जीवन के लिए
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

२२. वह स्वयं ही पृथ्वी-शस्त्र (हल आदि) का प्रयोग करता है, दूसरों से पृथ्वी-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और पृथ्वी-शस्त्र के प्रयोग करनेवाले का समर्थन करता है।

२३. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

२४. वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

२५. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए।

२६. इच्चत्थं गड्ढिए लोए।

२७. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्म-समारंभेणं पुढवि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२८. से बेमि—
अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हियमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,

२५. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रंथि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

२६. यह आसक्ति ही लोक है।

२७. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा पृथ्वी-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

२८. वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पंगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,

अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

२९. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

३०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

३१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

३२. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढवि-सत्थं समारंभेज्जा, नेवण्णेहिं पुढवि-सत्थं समारंभावेज्जा, नेवण्णे पुढवि-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

३३. जस्सेए पुढवि-कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

२९. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे ।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार पृथ्वीकाय के अवयवों का ।]

३०. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह पृथ्वीकायिक वध-बंधन अज्ञात है ।

३१. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह पृथ्वीकायिक वध-बंधन ज्ञात है ।

३२. उस पृथ्वीकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं पृथ्वी-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही पृथ्वी-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही पृथ्वी-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है ।

३३. जिसके लिए ये पृथ्वी कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

तइओ उद्देसो

३४. से बेमि—

से जहावि अणगारे उज्जुकडे, णियागपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए ।

३५. जाए सद्धाए णिक्खंतो, तमेव अणुपालिया विजहित्ता विसोत्तियं ।

३६. पणया वीरा महावीहिं ।

३७. लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुओभयं ।

३८. से बेमि—

णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा ।

जे लोयं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ ।

जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं अब्भाइक्खइ ।

३९. लज्जमाणा पुढो पास ।

४०. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

४१. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदय-कम्म-समारंभेणं उदय-सत्थं समारंभमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

४२. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

४३. इमस्स चेव जीवियस्स,

परिवंदण-माणण-पूयणाए,

जाई-मरण-मोयणाए,

दुक्खपडिघायहेउं ।

तृतीय उद्देशक

३४. वही मैं कहता हूँ—
जिससे अनगार ऋजु-परिणामी, मोक्ष-मार्गी और आर्जवधारी कहा गया है।

३५. जिस श्रद्धा से निष्क्रमण किया, उसका शंका-रहित पालन करें।

३६. वीर-पुरुष महापथ पर समर्पित हैं।

३७. लोक को जिन-आज्ञा से समझकर भयमुक्त हों।

३८. वही मैं कहता हूँ—
[जलकायिक] लोक को न तो स्वयं अस्वीकार करे और न ही अपनी आत्मा को अस्वीकार करे।
जो [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है, वह आत्मा को अस्वीकार करता है, जो आत्मा को अस्वीकार करता है, वह [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है।

३९. तू उन्हें पृथक पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

४०. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं 'हम अनगार हैं।'

४१. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा जल-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर जल-कायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

४२. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

४३. और इस जीवन के लिए,
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए,
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है]

४४. से सयमेव उदय-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा उदय-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा उदय-सत्थं समारंभंते समणुजाणइ ।

४५. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

४६. से तं संबुज्भमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

४७. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

४८. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

४९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदय-कम्म-समारंभेणं उदय-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

५०. से बेमि—
अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,

४४. वह स्वयं ही जल-शस्त्र का उपयोग करता है, दूसरों से जल-शस्त्र का उपयोग करवाता है और जल-शस्त्र के उपयोग करने वालों का समर्थन करता है।

४५. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

४६. वह (साधु) उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

४७. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही (हिंसा) ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

४८. यह आसक्ति ही लोक है।

४९. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा जल-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर जलकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

५०. वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पंगु होते हैं तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,

अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

५१. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

५२. से बेमि—
संति पाणा उदय-निस्सिया जीवा अणेगा ।

५३. इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदय-जीवा वियाहिया ।

५४. सत्थं चेत्थं अणुवीइ पासा ।

कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

५१. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार जलकाय के अवयवों का।]

५२. वही, मैं कहता हूँ—
अनेक प्राणधारी जीव जल के आश्रित हैं।

५३. हे पुरुष! इस अनगार जिनशासन में कहा गया है कि जल स्वयं जीव रूप है।

५४. इस जलकायिक शस्त्र [हिंसा] पर विचार कर देख।

५५. पुढो सत्थं पवेइयं ।

५६. अदुवा अदिण्णादाणं ।

५७. कप्पइ णे, कप्पइ णे पाउं, अदुवा विभूसाए ।

५८. पुढो सत्थेहिं विउट्टंति ।

५९. एत्थवि तेसिं णो णिकरणाए ।

६०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

६१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

६२. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं उदय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं उदय-सत्थं समारंभावेज्जा, उदय-सत्थं समारंभंते वि अण्णे ण समणुजाणेज्जा ।

६३. जस्सेए उदय-कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

६४. से बेमि—

णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा ।
जे लोगं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ ।
जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ ।

५५. शस्त्र अलग-अलग निरूपित हैं।

५६. अन्यथा अदत्तादान है।
[केवल हिंसा ही नहीं है, अपितु चोरी भी है।]

५७. कुछ लोगों के लिए जल पीने एवं नहाने के लिए स्वीकार्य है।

५८. वे पृथक-पृथक शस्त्रों से जलकाय की हिंसा करते हैं।

५९. यहाँ भी उनका कथन प्रामाणिक नहीं है।

६०. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह जलकायिक वध-बंधन अज्ञात है।

६१. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह जलकायिक वध-बंधन ज्ञात है।

६२. उस जलकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं जल-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही जल-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही जल-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

६३. जिसके लिए ये जल-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६४. वही मैं कहता हूँ—
[अग्निकायिक] लोक को न तो स्वयं अस्वीकार करे और न ही अपनी आत्मा को अस्वीकार करे।
जो [अग्निकायिक] लोक को अस्वीकार करता है, वह आत्मा को अस्वीकार करता है, जो आत्मा को अस्वीकार करता है, वह [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है।

६५. जे दीहलोग-सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे ।
जे असत्थस्स खेयण्णे, से दीहलोग-सत्थस्स खेयण्णे ।

६६. वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं, संजएहिं सया जत्तेहिं सया अप्पमत्तेहिं ।

६७. जे पमत्ते गुणट्ठिए, से हु दंडे पवुच्चइ ।

६८. तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं ।

६९. लज्जमाणा पुढो पास ।

७०. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

७१. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणि-कम्म-समारंभेणं अगणि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

७२. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

७३. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

७४. से सयमेव अगणि-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणि-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणि-सत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ ।

७५. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

७६. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

६५. जो अग्नि-शस्त्र को जानने वाला है, वह अशस्त्र/अहिंसा को जानने वाला है। जो अहिंसा को जानने वाला है, वह अग्नि-शस्त्र को जानने वाला है।

६६. संयमी, अप्रमत्त, यमी, वीर-पुरुषों ने इस अग्नि-तत्त्व को सदैव साक्षात् देखा है।

६७. जो प्रमत्त एवं अग्नि-गुणों का अर्थी है, वही हिंसक कहलाता है।

६८. यह जानकर मेधावी पुरुष सोचे कि जो मैंने पहले प्रमादवश किया, वह अब नहीं करूंगा।

६९. तू उन्हें पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

७०. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं — 'हम अनगार हैं।'

७१. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्नि-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर अग्निकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

७२. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

७३ और इस जीवन के लिए
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

७४. वह स्वयं ही अग्नि-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरों से अग्नि-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और अग्नि-शस्त्र के प्रयोग करनेवाले का समर्थन करता है।

७५. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

७६. वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

७७. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

७८. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

७९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणि-कम्म-समारंभेणं अगणि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

८०. से बेमि—
अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,

७७. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रंथि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है ।

७८. यह आसक्ति ही लोक है ।

७९. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्नि-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर अग्निकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

८०. वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पंगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,

अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

८१. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

८२. से बेमि—
संति पाणा पुढवि-णिस्सिया, तण-णिस्सिया, पत्त-णिस्सिया, कट्ठ-णिस्सिया
गोमय-णिस्सिया, कयवर-णिस्सिया ।

८३. संति संपातिमा पाणा, आहच्च संपयंति य ।
अगणिं च खलु पुट्ठा, एगे संघायमावज्जंति ।।
जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति ।
जे तत्थ परियावज्जंति, ते तत्थ उद्दायंति ।।

८४. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अ परिण्णाया भवंति ।

८५. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

८६. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं अगणि-सत्थं समारंभेज्जा, नेवण्णेहिं अगणि-सत्थं समारंभावेज्जा, अगणि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणुजाणेज्जा ।

कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

८१. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवों का।]

८२. वही मैं कहता हूँ—
प्राणी पृथ्वी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित हैं, पत्तों के आश्रित हैं, काष्ठ के आश्रित हैं, गोबर-कण्डे के आश्रित हैं, कचरे के आश्रित हैं।

८३. संपातिम प्राणी अग्नि में आकर गिरते हैं और अग्नि का स्पर्श पाकर कुछ संकुचित होते हैं। वे वहाँ परितप्त होते हैं और जो वहाँ परितप्त होते हैं, वे वहाँ मर जाते हैं।

८४. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह अग्निकायिक वध-बन्धन अज्ञात है।

८५. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह अग्निकायिक वध-बन्धन ज्ञात है।

८६. उस अग्निकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं अग्नि-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही अग्नि-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही अग्नि-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

पंचमो उद्देसो

८८. तं णो करिस्सामि समुट्ठाए।

८९. मत्ता मइमं अभयं विदित्ता।

९०. तं जे णो करए. एसोवरए. एत्थोवरए एस अणगारेत्ति पवुच्चइ।

९१. जे गुणे से आवट्टे. जे आवट्टे से गुणे।

९२. उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासइ. सुणमाणे सद्दाइं सुणेइ।

९३. उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ. सद्देसु यावि।

९४. एस लोए वियाहिए।

९५. एत्थ अगुत्ते अणाणाए।

९६. पुणो-पुणो गुणासाए. वंकसमायारे. पमत्ते अगारमावसे।

...क्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
...COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING
ISBN : 81-7450-...

८७. जिसके लिए ये अग्नि-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचम उद्देशक

८८. मैं संयम-मार्ग पर समुपस्थित होकर उस हिंसा को नहीं करूँगा।

८९. मतिमान पुरुष अभय को जानकर [हिंसा नहीं करता]

९०. जो हिंसा नहीं करता, वह हिंसा से विरत होता है। जो विरत है, वह अनगार कहा जाता है।

९१. जो गुण (इन्द्रिय-विषय) है, वह आवर्त संसार है और जो आवर्त है, वह गुण है।

९२. ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्, प्राची दिशाओं में देखता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्दों को सुनता है।

९३. ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्, प्राची दिशाओं में मूर्च्छित होता हुआ रूपों में मूर्च्छित होता है, शब्दों में मूर्च्छित होता है।

९४. इसे संसार कहा गया है।

९५. जो इन [इन्द्रिय-विषयों] में अगुप्त/असंयमी है, वह आज्ञा/अनुशासन में नहीं है।

९६. वह पुनः पुनः गुणों में आसक्त है, छल-कपट करता है, प्रमत्त है, गृहवासी है।

९७. लज्जमाणा पुढो पास ।

९८. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

९९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्म-समारंभेणं वणस्सइ-सत्थं समारंभमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१००. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

१०१. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

१०२. से सयमेव वणस्सइ-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइ-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा वणस्सइ-सत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ ।

१०३. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

१०४. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१०५. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

१०६. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

१०७. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सई-कम्म-समारंभेणं, वणस्सइ-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

९७. तू उन्हें पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख ।

९८. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं — 'हम अनगार हैं ।'

९९. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा वनस्पति-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर वनस्पतिकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं ।

१००. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है ।

१०१. और इस जीवन के लिए ही
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दु:खों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है ।]

१०२. वह स्वयं ही वनस्पति-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरों से वनस्पति-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और वनस्पति-शस्त्र के प्रयोग करनेवाला का समर्थन करता है ।

१०३. वह हिंसा अहित के लिए है ओर वही अबोधि के लिए है ।

१०४. वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है ।

१०५. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है ।

१०६. यह आसक्ति ही लोक है ।

१०७. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा वनस्पति-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर वनस्पतिकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

१०८. से बेमि—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,

१०८. वही मैं कहता हूँ—

कुछ जन्म से अन्धे होते हैं, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पंगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,

अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१०९. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

११०. से बेमि—
इमंपि जाइधम्मयं, एयंपि जाइधम्मयं ।
इमंपि वुड्ढिधम्मयं, एयंपि वुड्ढिधम्मयं ।
इमंपि चित्तमंतयं, एयंपि चित्तमंतयं ।
इमंपि छिण्णं मिलाइ, एयंपि छिण्णं मिलाइ ।

इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं ।
इमंपि अणिच्चयं, एयंपि अणिच्चयं ।
इमंपि असासयं, एयंपि असासयं ।
इमंपि चओवचइयं, एयंपि चओवचइयं ।

इमंपि विपरिणामधम्मयं, एयंपि विपरिणामधम्मयं ।

१११. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

११२. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

११३. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइ-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वणस्सइ-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे वणस्सइ-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

११४. जस्सेए वणस्सइ-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि

कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१०९. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार वनस्पतिकाय के अवयवों का।]

११०. वही मैं कहता हूँ—
यह (मनुष्य) भी जातिधर्मक है, यह (वनस्पति) भी जातिधर्मक है।
यह (मनुष्य) भी वृद्धिधर्मक है, यह (वनस्पति) भी वृद्धिधर्मक है।
यह (मनुष्य) भी चैतन्य है. यह (वनस्पति) भी चैतन्य है।
यह (मनुष्य) भी छिन्न होने पर कुम्हलाता है. यह (वनस्पति) भी छिन्न होने पर कुम्हलाता है।
यह (मनुष्य) भी आहारक है, यह (वनस्पति) भी आहारक है।
यह (मनुष्य) भी अनित्य है. यह (वनस्पति) भी अनित्य है।
यह (मनुष्य) भी अशाश्वत है, यह (वनस्पति) भी अशाश्वत है।
यह मनुष्य भी उपचित और अपचित है, यह (वनस्पति) भी उपचित और अपचित है।
यह (मनुष्य) भी विपरिणामीधर्मक है, यह (वनस्पति) भी विपरिणामी-धर्मक है।

१११. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह वनस्पतिकायिक वध-बन्धन अज्ञात है।

११२. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह वनस्पतिकायिक वध-बन्धन ज्ञात है।

११३. उस वनस्पतिकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं वनस्पति-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही वनस्पति-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही वनस्पति-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

११४. जिसके लिए ये वनस्पतिकर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

छट्ठो उद्देसो

११५. से बेमि—
संतिमे तसा पाणा, तं जहा—
अंडया पोयया जराउया रसया संसेयया संमुच्छिमा उब्भिया ओववाइया ।

११६. एस संसारेत्ति पवुच्चइ ।

११७. मंदस्स अवियाणओ ।

११८. णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिणिव्वाणं ।

११९. सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं अस्सायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं त्ति बेमि ।

१२०. तसंति पाणा पदिसो दिसासु य ।

१२१. तत्थ-तत्थ पुढो पास, आउरा परितावेंति ।

१२२. संति पाणा पुढो सिया ।

१२३. लज्जमाणा पुढो पास ।

१२४. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

१२५. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकाय-समारंभेणं तसकाय-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१२६. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

षष्ठ उद्देशक

११५ वही मैं कहता हूँ—
ये त्रस प्राणी हैं जैसे कि—
अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज/भूमिज और औपपातिक।

११६. यह [त्रसलोक] संसार है, ऐसा कहा जाता है।

११७. यह मंद और अज्ञानी के लिए होता है।

११८. चिन्तन एवं परिशीलन करके देखें कि प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है।

११९. सभी प्राणियों, सभी भूतों, सभी जीवों और सभी सत्त्वों के लिए अशाता और अपरिनिर्वाण (दुःख) भयंकर दुःख रूप है।

१२०. प्राणी प्रत्येक दिशा और विदिशा में त्रास/दुःख पाते हैं।

१२१. तू यत्र-तत्र पृथक-पृथक देख! आतुर मनुष्य दुःख देते हैं।

१२२. प्राणी पृथक-पृथक हैं।

१२३. तू उन्हें पृथक पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

१२४. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं— 'हम अनगार हैं।',

१२५. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रस-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर त्रसकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

१२६. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

१२७. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

१२८. से सयमेव तसकाय-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकाय-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकाय-सत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ ।

१२९. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

१३०. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१३१. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

१३२. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

१३३. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकाय-समारंभेणं तसकाय-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१३४. से बेमि—
अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,

१२७ और इस जीवन के लिए
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है ।]

१२८ वह स्वयं ही त्रस-शस्त्र का उपयोग करता है, दूसरों से त्रस-शस्त्र का उपयोग करवाता है और त्रस-शस्त्र के उपयोग करने वालों का समर्थन करता है।

१२९. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

१३०. वह (साधु) उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

१३१. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही (हिंसा) ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

१३२. यह आसक्ति ही लोक है।

१३३. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रस-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर त्रसकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

१३४. वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते है, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं।
कुछ जन्म से पंगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,

अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१३५. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए।

कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक तो. कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आंख तक, तो कुछ छेदन से आंख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१२५. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।

[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवों का।]

१३६. से बेमि—

अप्पेगे अच्चाए वहंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति,

अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति,
अप्पेगे हिययाए वहंति, अप्पेगे पित्ताए वहंति,
अप्पेगे वसाए वहंति, अप्पेगे पिच्छाए वहंति,
अप्पेगे पुच्छाए वहंति, अप्पेगे वालाए वहंति,
अप्पेगे सिंगाए वहंति, अप्पेगे विसाणाए वहंति,
अप्पेगे दंताए वहंति, अप्पेगे दाढाए वहंति,
अप्पेगे णहाए वहंति, अप्पेगे ण्हारुणीए वहंति,
अप्पेगे अट्ठीए वहंति, अप्पेगे अट्ठिमिंजाए वहंति,
अप्पेगे अट्ठाए वहंति, अप्पेगे अणट्ठाए वहंति,
अप्पेगे हिंसिसु मेत्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसंति मेत्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्ति वा वहंति,

१३७. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

१३८. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

१३९. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकाय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं तसकाय-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे तसकाय-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

१४०. जस्सेए तसकाय-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१३६. वही मैं कहता हूँ—

कुछ अर्चना [देह-अलंकरण/मन्त्र-सिद्धि/यज्ञ-याग] के लिए वध करते हैं,
कुछ चर्म के लिए वध करते हैं।
कुछ मांस के लिए वध करते हैं, कुछ रक्त के लिए वध करते हैं।
कुछ हृदय/कलेजे के लिए वध करते हैं, कुछ पित्त के लिए वध करते हैं।
कुछ चर्बी के लिए वध करते हैं, कुछ पंख के लिए वध करते हैं।
कुछ पूंछ के लिए वध करते हैं, कुछ बाल के लिए वध करते हैं।
कुछ सींग के लिए वध करते है, कुछ विषाण/हस्तिदंत के लिए वध करते हैं।
कुछ दांत के लिए वध करते हैं, कुछ दाढ़ के लिए वध करते हैं।
कुछ नख के लिए वध करते हैं. कुछ स्नायु के लिए वध करते हैं।
कुछ अस्थि के लिए वध करते हैं, कुछ अस्थिमज्जा के लिए वध करते हैं।
कुछ प्रयोजन से वध करते हैं, कुछ निष्प्रयोजन वध करते हैं।
या कुछ 'मुझे मारा' इसलिए वध करते हैं,
या कुछ 'मुझे मारते हैं' इसलिए वध करते हैं,
या कुछ 'मुझे मारेंगे' इसलिए वध करते हैं।

१३७. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह त्रसकायिक वध-बंधन अज्ञात है।

१३८. शस्त्र समारम्भ न करने वाले के लिए यह त्रसकायिक वध-बंधन ज्ञात है।

१३९. उस त्रसकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं त्रस-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही त्रस-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही त्रस-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१४०. जिसके लिए ये त्रस-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मा [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

सत्तमो उद्देसो

१४१. पहू एजस्स दुगुंछणाए।

१४२. आयंकदंसी अहियं ति णच्चा।

१४३. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ।

१४४. एयं तुलमण्णेसिं।

१४५. इह संतिगया दविया, णावकंखंति वीजिउं।

१४६. लज्जमाणा पुढो पास।

१४७. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा।

१४८. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्म-समारंभेणं वाउ-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

१४९. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

१५०. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं।

१५१. से सयमेव वाउ-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउ-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा वाउ-सत्थं समारंभंते समणुजाणइ।

सप्तम उद्देशक

१४१. वह वायुकाय की हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ है ।

१४२. आतंकदर्शी पुरुष हिंसा को अहित रूप जानकर छोड़ता है ।

१४३. जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है ।
जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है ।

१४४. इस बात को तुला पर तौलें ।

१४५. इस [अर्हत्-शासन] में [मुनि] शान्त और करुणाशील होते हैं, अतः वे वीजन की आकांक्षा नहीं करते ।

१४६. तू उन्हें पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख ।

१४७. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं — 'हम अनगार हैं ।'

१४८. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा वायु-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर वायुकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

१४९. निश्चय ही, इस विषय में भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है ।

१५०. और इस जीवन के लिए
प्रशंसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एवं मुक्ति के लिए
दुःखों से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है ।]

१५१. वह स्वयं ही वायु-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरों से वायु-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और वायु-शस्त्र के प्रयोग करने वाला का समर्थन करता है ।

१५२. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

१५३. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१५४. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—

एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

१५५. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

१५६. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्म-समारंभेणं, वाउ-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१५७. से बेमि—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,

१५२. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

१५३. वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

१५४. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

१५५. यह आसक्ति ही लोक है।

१५६. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा वायु-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर वायुकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

१५७. वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पंगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पंगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,

अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१५८. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

१५९. से बेमि—

संति संपातिमा पाणा, आहच्च संपयंति य ।
फरिसं च खलु पुट्ठा, एगे संघायमावज्जंति ।।
जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति ।
जे तत्थ परियावज्जंति, ते तत्थ उद्दायंति ।।

१६०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

१६१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

१६२. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउ-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वाउ-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे वाउ-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दांत तक, तो कुछ छेदन से दांत तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक.
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१५८. कोई मूछित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवों का।]

१५९. वही मैं कहता हूँ, संपातिम प्राणी नीचे आकर गिरते हैं और वायु का स्पर्श पाकर कुछ संकुचित होते हैं। जो यहाँ संकुचित होते हैं, वे वहाँ परितप्त होते हैं और जो वहाँ परितप्त होते हैं, ये वहाँ मर जाते हैं।

१६०. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह वायुकायिक वध-बन्धन अज्ञात है।

१६१. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह वायुकायिक वध-बन्धन ज्ञात है।

१६२. उस वायुकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं वायु-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही वायु-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही वायु-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१६३. जस्सेए दाउ-सत्थं-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१६४. एत्थं पि जाणे उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति आरंभमाणा विणयं वयंति ।

१६५. छंदोवणीया अज्झोववण्णा ।

१६६. आरंभसत्ता पकरेंति संगं ।

१६७. से वसुमं सव्व-समण्णागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं ।

१६८. तं णो अण्णेसिं ।

१६९. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

१७०. जस्सेए छज्जीव-णिकाय-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१६३. जिसके लिए ये वायु-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१६४. यहाँ समझें कि वे आबद्ध हैं, जो आचरण का पालन नहीं करते, हिंसा करते हुए भी विनय/अहिंसा का उपदेश देते हैं।

१६५. वे स्वच्छन्दी और विषय-गृद्ध हैं।

१६६. हिंसा में आसक्त पुरुष संग/बन्धन बढ़ाते हैं।

१६७. अहिंसक संबुद्ध-पुरुष के लिए प्रज्ञा से पापकर्म अकरणीय है।

१६८. उसका अन्वेषण न करे।

१६९. उस छह जीवनिकायिक-हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं छह जीवनिकाय-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही छह जीवनिकाय-शस्त्र का उपयोग करवाता है, न ही छह जीवनिकाय-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१७०. जिसके लिए ये छह जीवनिकाय-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

बीअं अज्झयणं

लोग-विजओ
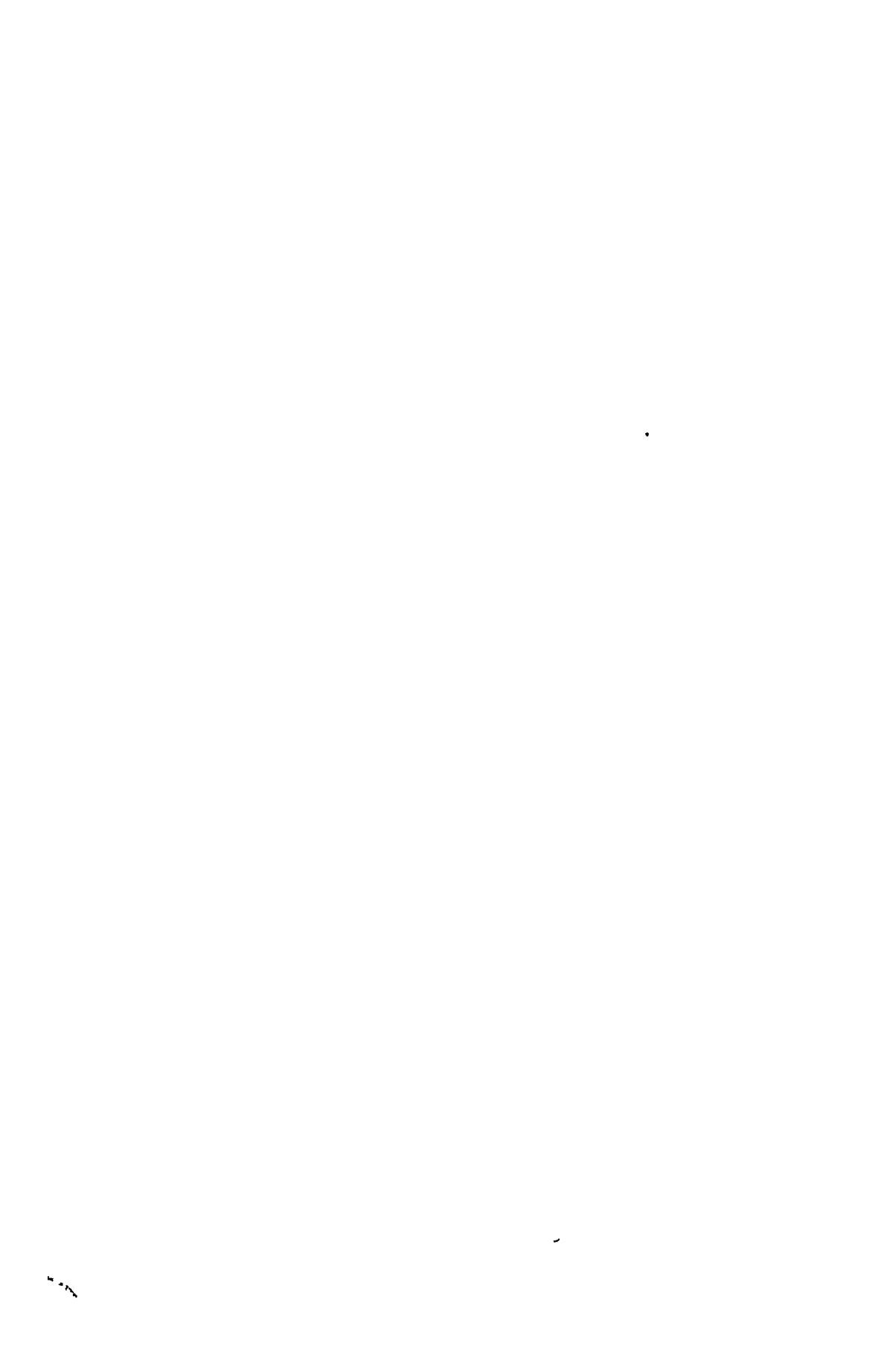
द्वितीय अध्ययन

लोक-विजय

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'लोक-विजय' है। यह मानव-मन के द्वन्द्वों एवं आत्म स्वीकृतियों का दर्पण है। साधक आत्मपूर्णता के लिए समर्पित जीवन का एक नाम है। सम्भव है मन की हार और जीत के बीच वह भूल जाये। महावीर अनुत्तरयोगी आत्मदर्शी थे। साधकों के लिए उनका मार्ग-दर्शन उपादेय है। इस अध्याय में साधक की हर सम्भावित फिसलन का रेखाङ्कन है। साधना के राज-मार्ग पर बढ़े पाँव शिथिल या स्खलित न हो जाय, इसके लिए हर पहर सचेत रहना साधक का धर्म है।

प्रस्तुत अध्याय अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग का स्वाध्याय है। असंयम से निवृत्ति और संयम से प्रवृत्ति—यही इस अध्याय के वर्ण-शरीर की अर्थ-चेतना है। निजानन्द-रसलीनता ही साधक का सच्चा व्यक्तित्व है। इस आत्मरमणता का ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है।

साधना के लिए चाहिए ऊर्जा। ऊर्जा सामर्थ्य की ही मुखछवि है। शरीर या इन्द्रियों की ऊर्जा जर्जरता की ओर यात्राशील है। इसे नव्य-भाव अर्थवत्ता के साथ नियोजित एवं प्रयुक्त कर लेने में इसकी महत् उपादेयता है। दीपक बुझने से पहले उसकी ज्योति का उपयोग करना ही प्रज्ञा-कौशल है। मृत्यु के बाद कैसे करेंगे मृत्युंजयता!

साधक अहर्निश साधना के लिए ही कटिबद्ध होता है। उसके लिए समग्रता से बल-पराक्रम का प्रयोग करना साधक की पहचान है। अतः साधक को विराम और विश्राम कैसे शोभा देगा? प्रस्थान-केन्द्र से प्रस्थित होने के बाद उसका सम्मोहन और आकर्षण विसर्जित करना अनिवार्य है।

वान्त का आकर्षण पराजय का उत्सव है। पूर्व सम्बन्धों का स्मरण कर उनके लिए मुंह से लार टपकाना श्रमण-धर्म की सीमा का अतिक्रमण है। यह तो त्यक्त प्रमत्तता एवं इन्द्रिय-विलासिता का पुनः अङ्गीकरण है। ममत्व से मुक्त होना

ही मुनित्व की प्रतिष्ठा है। लालसा का प्रत्याशी तो पुनः संसार का ही आह्वान कर रहा है। स्वयं के धैर्य पर सुस्थित होना अनिवार्य है। साधक को चाहिये कि वह तृण-खण्ड की भाँति कामना के प्रवाह में प्रवाहित होने से स्वयं को बचाये। प्रस्तुत अध्याय साधक को उद्बुद्ध करता है शाश्वत के लिए।

संसार नदी-नाव का संयोग है। अतः किसके प्रति आसक्ति और किसके प्रति अहं-भूमिका! योनि-योनि में निवास करने के बाद कैसा जातिमद, सम्बन्धों का कैसा सम्मोहन? जब शरीर भी अपना नहीं है, तो किसका परिग्रह और किसके प्रति परिग्रह-बुद्धि? काम-क्रीड़ा आत्मरंजन है या मनोरंजन? संयम-पथ पर पाँव वर्धमान होने के बाद असंयम का आलिंगन—क्या यही साधक की साध्यनिष्ठा है?

जीवन स्वप्नवत् है। सारे सम्बन्ध सांयोगिक हैं। माता-पिता हमारे अवतरण में सहायक के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं? पति और पत्नी विपरीत के आकर्षण में मात्र एक प्रगाढ़ता है। बच्चे पंख लगने ही नीड़ छोड़कर उड़ने वाले पंछी हैं। बुढ़ापा आयु का बन्दीगृह है। यह मर्त्य शरीर हाड़-माँस का पिंजरा है। मनुष्य तो निपट अकेला है। फिर धर्म-पथ से स्खलन कैसा? धर्म आत्म-आश्रित है, शेष लोकाचार है, धूप-छाँह-सा आँख-मिचौनी का खेल।

सर्वदर्शी महावीर साधक की हर संभावना पर पैनी दृष्टि रखे हुए हैं। कर्तव्य-पथ पर चलने का संकल्प करने के बाद पाँवों का मोच खाना संकल्पों का शैथिल्य है। साधक को चाहिये कि वह आठों याम अप्रमत्ता, आत्म-समानता, अनासक्ति, तटस्थता और निष्कामवृत्ति का पंचामृत पिये-पिलाये। इसी से प्राप्त होता है कैवल्य-लाभ, सिद्धालय का उत्तराधिकार।

साधक आन्तरिक शत्रुओं को परास्त कर विजय का स्वर्ण पदक प्राप्त करता है। यह आत्म-विजय सत्यतः लोक-विजय है। सच्ची वीरता अन्य को नहीं अनन्य अपने आपको जीतने में है। देहगत और आत्मगत शत्रुओं पर विजयश्री प्राप्त करने वाला ही जिन है, आत्म-शास्ता है, लोक-विजेता है।

पढमो उद्देसो

१. जे गुणे से मूलट्ठाणे,
जे मूलट्ठाणे से गुणे ।

२. इयं से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो पुणो रए पमत्ते तं जहा—माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, सुण्हा मे, सहि-सयण-संगंथ-संथुया मे, विवित्तोवगरण-परियट्टण-भोयण-अच्छायणं मे, इच्चत्थं गड्ढए लोए वसे पमत्ते ।

३. अहो य राओ य परियप्पमाणे, कालाकालसमुट्ठाई,
संजोगट्ठी, अट्ठालोभी, आलुंपे सहसाकारे,
विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो-पुणो ।

४. अप्पं च खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं तं जहा—
सोय-परिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं,
चक्खु-परिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं,
घाण-परिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं,
रसणा-परिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं,
फास-परिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं ।

५. अभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए, तओ से एगया मूढभावं जणयंति ।

प्रथम उद्देशक

१. जो गुण है, वह मूल स्थान है।
जो मूल स्थान है, वह गुण है।

२. इस प्रकार वह गुणार्थी [विषयासक्त] महत् परिताप से पुनः पुनः प्रमाद में रत होता है। जैसे कि — मेरी माता, मेरा पिता, मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरा मित्र, स्वजन, कुटुम्बी, परिचित, मेरे विविध उपकरण, परिवर्तन/धन-सम्पत्ति का आदान-प्रदान, भोजन, वस्त्र — इनमें आसक्त-पुरुष प्रमत्त होकर संसार में वास करता है।

३. इस प्रकार रात-दिन संतप्त होता हुआ काल या अकाल में विचरण करने वाला, संयोग-अर्थी/परिग्रही, अर्थ-लोभी, ठगी, दुःसाहसी, दत्तचित्त पुरुष पुनः पुनः शस्त्र/संहार करता है।

४. निश्चय ही इस [संसार] में कुछ मनुष्यों का आयुष्य अल्प है। जैसे कि—
श्रोत्र-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
चक्षु-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
घ्राण-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
रसना-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
स्पर्श-परिज्ञान से परिहीन होने पर,

५. निश्चय ही इनसे अभिक्रान्त आयुष्य का संप्रेक्षण कर वे कभी मूढ़भाव को प्राप्त करते हैं।

६. जेहिं वा सद्धि संवसइ ते वि णं एगया णियगा तं पुव्विं परिवयंति, सो वि ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

७. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।

८. से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रईए, ण विभूसाए ।

९. इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए ।

१०. अंतरं च खलु इमं संपेहाए—धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए ।

११. वयो अच्चेइ जोव्वणं व ।

१२. जीविए इह जे पमत्ता, से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवित्ता उत्तासइत्ता ।

१३. अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे ।

१४. जेहिं वा सद्धि संवसइ ते वा णं एगया णियगा तं पुव्विं पोसेंति, सो वा ते णियगे पच्छा पोसेज्जा ।

१५. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।

१६. उवाइय-सेसेण वा संनिहि-संनिचओ किज्जइ, इहमेगेसिं असंजयाणं भोयणाए ।

१७. तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जंति ।

६. जिनके साथ रहता है-वे स्वजन ही सबसे पहले निन्दा करते हैं। बाद में वह उन स्वजनों की निन्दा करता है।

७. वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो।

८. न तो वह हास्य के लिए है, न क्रीड़ा के लिए, न रति के लिए और न ही शृङ्गार के लिए ।

९. अतः पुरुष अहोविहार/संयम-साधना के लिए समुपस्थित हो जाए।

१०. इस अंतर को देखकर धीर-पुरुष मुहूर्तभर भी प्रमाद न करे।

११. वय और यौवन बीत रहा है।

१२. जो इस संसार में जीवन के प्रति प्रमत्त है, वह हनन, छेदन, भेदन, चोरी, डकैती, उपद्रव एवं अतित्रास करनेवाला होता है।

१३. मैं वह करूँगा, जो किसी ने न किया हो, ऐसा मानता हुआ वह हिंसा करता है।

१४. जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही एकदा पोषण करते हैं। बाद में वह उन स्वजनों का पोषण करता है।

१५. वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो।

१६. इस संसार में उन असंयत-पुरुषों के भोजन के लिए उपभुक्त सामग्री में से संग्रह और संचय किया जाता है।

१७. पश्चात् उनके शरीर में कभी रोग के उत्पाद/उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

१८. जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया णियगा तं पुव्विं परिहरंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिहरेज्जा ।

१९. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।

२०. जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए, खणं जाणाहि पंडिए !

२१. जाव सोय-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव णेत्त-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव घाण-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव जीह-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव फास-परिण्णाणा अपरिहीणा ।

२२. इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवासिज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२३. अरइं आउट्टे से मेहावी खणंसि मुक्के ।

२४. अणाणाए पुट्ठा वि एगे णियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा ।

२५. 'अपरिग्गहा भविस्सामो' समुट्ठाए, लद्धे कामेहिगाहंति ।

२६. अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति ।

१८. जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही कभी छोड़ देते हैं। बाद में वह उन स्वजनों को छोड़ देता है।

१९. वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो।

२०. हे पंडित! तू प्रत्येक सुख एवं दुःख को जानकर, अवस्था को अनतिक्रान्त देखकर क्षण को पहचान।

२१. जब तक श्रोत्र-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक नेत्र-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक घ्राण-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक जीभ-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक स्पर्श-परिज्ञान पूर्ण है,

२२. [तब तक] विविध प्रज्ञापूर्ण इस आत्मा के लिए सम्यक् अनुशीलन करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२३. जो अरति का निवर्तन करता है, वह मेधावी क्षणभर में मुक्त हो जाता है।

२४. कोई मंदमति-पुरुष मोह से आवृत होकर, आज्ञा के विपरीत चलकर, परीषह-स्पृष्ट होता हुआ निवर्तन करता है

२५. 'हम भविष्य में अपरिग्रही होंगे' कुछ यह विचार करके प्राप्त कामों को ग्रहण करते हैं।

२६. अनाज्ञा से मुनि [मोह का] प्रतिलेख/शोधन करते हैं।

२७. इत्थ मोहे पुणो-पुणो सण्णा णो हव्वाए णो पाराए ।

२८. विमुक्का हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो ।

२९. लोभं अलोभेण दुगंछमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ ।

३०. विणइत्तु लोभं निक्खम्म, एस अकम्मे जाणइ-पासइ ।

३१. पडिलेहाए णावकंखइ एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ।

३२. अहो य राओ य परितप्पमाणे, कालाकालसमुट्ठाई,
संजोगट्ठी अट्ठालोभी, आलुंपे सहसाकारे,
विणिविट्ठचित्ते, इत्थ सत्थे पुणो-पुणो ।

३३. से आय-वले, से णाइ-वले, से मित्त-वले, से पेच्च-वले, से देव-वले, से राय-वले, से चोर-वले, से अइहि-वले, से किवण-वले, से समण-वले, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंड-समायाणं ।

३४. संपेहाए भया कज्जइ पाव-मोक्खोत्ति मण्णमाणे. अदुआ आसंसाए ।

३५. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभेज्जा, णेवण्णं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवण्णं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंतं समणुजाणेज्जा ।

३६. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

३७. जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि ।

—त्ति वेमि

२७. इस प्रकार वारम्वार मोह में आसंन्न पुरुप न इस पार है, न उस पार।

२८. वे ही मनुष्य विमुक्त हैं, जो मनुष्य पारगामी हैं।

२९. वे लोभ को अलोभ से परित्यक्त करते हुए प्राप्त कामों का अवगाहन नहीं करते।

३०. जो लोभ को छोड़कर प्रव्रजित होता है, वह अकर्म को जानता है, देखता है।

३१. जो प्रतिलेख की आकांक्षा नहीं करता, वह अनगार कहलाता है।

३२. रात-दिन संतप्त, कालाकाल-विहारी, संयोग-अर्थी (परिग्रही), अर्थलोभी, ठगी, दुःसाहसी, दत्तचित्त पुरुप पुनः पुनः शस्त्र/संहार करता है।

३३. वह आत्मवल, वह ज्ञातिवल, वह मित्र-वल, वह प्रैत्य-वल, वह देव-वल, वह राज-वल, वह चोर-वल, वह अतिथि-वल, वह कृपण-वल, वह श्रमण-वल के लिए इन विविध प्रकार के कार्यों से दंड-समादान/हिंसा करता है।

३४. पुरुष संप्रेक्षा [भविष्य की लालसा] से, भय से हिंसा करता है। स्वयं को पाप-मुक्त मानता हुआ आशा से हिंसा करता है।

३५. उसे जानकर मेधावी पुरुष न तो स्वयं इन कार्यों/उद्देश्यों से हिंसा करे, न ही अन्य कार्यों से हिंसा करवाए और न ही अन्य द्वारा किये जाने वाले इन कार्यों से हिंसा करनेवाले का समर्थन करे।

३६. यह मार्ग आर्यों द्वारा प्रवेदित है।

३७. इसलिए कुशल-पुरुप लिप्त न हो।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तीओ उद्देसो

३८. से असइं उच्चागोए, असइं णीयागोए ।

३९. णो हीणे, णो अइरित्ते, णो पीहए ।

४०. इय संखाय के गोयावाई ? के माणावाई ? कंसि वा एगे गिज्झे ?

४१. तम्हा पंडिए णो हरिसे, णो कुप्पे ।

४२. भूएहिं जाण पडिलेह सायं ।

४३. समिए एयाणुपस्सी तं जहा—अंधत्तं वहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं ।

४४. सहपमाएणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधायइ विरूवरूवे फासे पडिसंवेयइ ।

४५. से अवुज्झमाणे हओवहए जाइ-मरणं अणुपरियट्टमाणे ।

४६. जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं, खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं ।

४७. आरत्तं विरत्तं मणिकुंडलं सह हिरण्णेण, इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता ।

४८. ण इत्थ तवो वा, दमो वा, णियमो वा दिस्सइ ।

४९. संपुण्णं वाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेइ ।

तृतीय उद्देशक

३८. वह अनेक बार उच्च गोत्र और अनेक बार नीच गोत्र में उत्पन्न हुआ है।

३९. न हीन है, न अतिरिक्त/उच्च। इनमें से किसी की भी स्पृहा न करे।

४०. ऐसा समझ लेने पर कौन गोत्रवादी, कौन मानवादी और कौन किसमें गृद्ध ?

४१. इसलिए पंडित न हर्ष करे, न क्रोध करे।

४२. प्राणियों को जानो और उनकी शाता को पहचानो।

४३. इनको समतापूर्वक देखो, जैसेकि अंधापन, बहरापन, गूंगापन, कानापन, लूलापन, कुबड़ापन, बौनापन, कोढ़ीपन, चितकबरापन।

४४, पुरुष प्रमादपूर्वक विभिन्न प्रकार की योनियों का संधान/धारण करता है और नाना प्रकार की यातनाओं का प्रतिसंवेदन करता है।

४५. वह अनजान होता हुआ हत और उपहत होकर जन्म-मरण में अनुपरिवर्तन/परिभ्रमण करता है।

४६. क्षेत्र और वस्तु में ममत्व रखने वाले कुछ मनुष्यों को जीवन अलग-अलग रूप में प्रिय है।

४७. वे रंग-बिरंगे मणि, कुण्डल और स्वर्ण के साथ स्त्रियों में परिगृद्ध होकर उन्हीं में अनुरक्त होते हैं।

४८. इनमें तप, दमन अथवा नियम दिखाई नहीं देते।

४९. पूर्ण अज्ञानी पुरुष जीवन की कामना एवं भोगलिप्सा में मूढ़ है। इसलिए वह विपर्यास को प्राप्त होता है।

५० इणमेव णावकंखंति, जे जणा धुवचारिणो ।

५१. जाई-मरणं परिण्णाय, चरे संकमणे दढे ।

५२. णत्थि कालस्स णागमो ।

५३. सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा ।

५४. सव्वेसिं जीवियं पियं ।

५५. तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविहेणं जा वि से तत्थ मत्ता भवइ—अप्पा वा बहुगा वा ।

५६. से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ, भोयणाए ।

५७. तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ ।

५८. तं पि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झइ ।

५९. इय से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

६०. मुणिणा हु एयं पवेइयं ।

६१. अणोहंतरा एए, नो य ओहं तरित्तए ।
अईरंगमा एए, नो य तीरं गमित्तए ।
अपारंगमा एए, नो य पारं गमित्तए ।

५०. जो मनुष्य ध्रुवचारी हैं, वे इस प्रकार के जीवन की आकांक्षा नहीं करते।

५१. जन्म-मरण को जानकर दृढ़ संक्रमण/चारित्र में विचरण करे।

५२. मृत्यु का समय निश्चित नहीं है।

५३. सभी प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सुख शाता/अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है, वध अप्रिय है, जीवन प्रिय है और जीवन की कामना है।

५४. सभी के लिए जीवित रहना प्रिय है।

५५. उनमें परिगृद्ध होकर मनुष्य द्विपद (दास-दासी) और चतुष्पद (पशु) को नियुक्त करके त्रिविध — मन, वचन, काया से संचय करता है। वह उनमें अल्प या अधिक उन्मत्त होता है।

५६. वह वहाँ उपभोग के लिए गृद्ध होकर बैठता है।

५७. तब वह किसी समय विविध, परिश्लेष्ठ, प्रचुर एवं महा-उपकरण वाला हो जाता है।

५८. उसकी उस सम्पत्ति को किसी समय सम्बन्धीजन बांट लेते हैं, चोर चुरा ले जाते हैं, राजा छीन लेता है, नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, अग्नि से जल जाता है।

५९. इस प्रकार वह दूसरे के अर्थ के लिए क्रूर कर्म करने वाला अज्ञानी है। उस दुःख से मूढ़ व्यक्ति विपर्यास को प्राप्त करता है।

६०. निश्चय ही, मुनि/भगवान् महावीर के द्वारा यह प्रवेदित है।

६१. ये न तो प्रवाह को पार करने वाले हैं। ये न ही तट को प्राप्त करने वाले हैं और न ही तट तक पहुँचने वाले है। ये अपारगामी है, इसलिए ये पार नहीं हो सकते।

६२. आदाणिज्जं च आयाय, तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ ।
विग्रहं पप्पखेयण्णे, तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ॥

६३. उद्देसो पासगस्स णत्थि ।

६४. वाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

६५. तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जंति ।

६६. जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया णियया पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

६७. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।

६८. जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं भोगामेव अणुसोयंति ।

६९. इहमेगेसिं माणवाणं ।

७०. तिविहेण जावि से तत्थ मत्ता भवइ—अप्पा वा बहुगा वा ।

७१. से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ भोयणाए ।

६२. संयमी-पुरुष आदानीय (ग्राह्य) को ग्रहण करके उस स्थान में स्थित नहीं होता। अखेदज्ञ/असंयमी-पुरुष वितथ्य/असत्य को प्राप्त करके उस स्थान में स्थित होता है।

६३. तत्त्वद्रष्टा के लिए कोई उपदेश नहीं है।

६४. परन्तु अज्ञानी पुरुष स्नेह और काम में आसन्न होने से दुःख का शमन नहीं करता। दुःखी व्यक्ति दुःखों के चक्र में ही अनुपरिवर्तन करता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६५. तब उसके लिए रोग के उत्पात उत्पन्न हो जाते हैं।

६६. जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही सबसे पहले निन्दा करते हैं। बाद में वह उन स्वजनों की निन्दा करता है।

६७. वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हैं। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं हो।

६८. वह प्रत्येक दुःख को शातोकारी जानकर भोगों का ही अनुचिन्तन करता है।

६९. इस संसार में कुछ मनुष्यों के लिए भोग होते हैं।

७०. वह मन-वचन-काया के तीन योगों से उनमें अल्प या अधिक उन्मत्त होता है।

७१. वह वहाँ उपभोग के लिए गृद्ध होकर बैठता है।

७२. तओ से एगया विपरिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ।

७३. तं पि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारडाहेण वा डज्झइ।

७४. इय से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ।

७५. आसं च छंदं च विगिंच धीरे।

७६. तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु।

७७. जेण सिया तेण णो सिया।

७८. इणमेव णावबुज्झंति, जे जणा मोहपाउडा।

७९. थीभि लोए पव्वहिए।

८०. ते भो वयंति—एयाइं आययणाइं।

८१. से दुक्खाए मोहाए माराए णरगाए णरग-तिरिक्खाए।

८२. सययं मूढे धम्मं णाभिजाणइ।

८३. उआहु वीरे—अप्पमाओ महामोहे।

८४. अलं कुसलस्स पमाएणं।

८५. संति-मरणं संपेहाए।

७२. तब वह किसी समय विविध, परिश्रेष्ठ प्रचुर एवं महा-उपकरण वाला हो जाता है।

७३. उसकी उस सम्पत्ति को किसी समय सम्बन्धीजन बाँट लेते हैं, चोर चुरा ले जाते हैं, राजा छीन लेता है, नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, अग्नि से जल जाता है।

७४. इस प्रकार वह दूसरे के अर्थ के लिए क्रूर कर्म करने वाला अज्ञानी है। उस दुःख से मूढ़ व्यक्ति विपर्यास करता है।

७५. हे धीर ! आशा और स्वच्छन्दता को छोड़।

७६. तू ही उस शल्य का निर्माता है।

७७. जिससे [भोग] है, उसीसे नहीं है।

७८. जो जन मोह से आवृत हैं, वे इसे समझ नहीं पाते।

७९. स्त्रियों से लोक व्यथित है।

८०. वे कहते हैं, हे पुरुष ! ये [भोग] आयतन हैं।

८१. वे दुःख, मोह, मृत्यु, नरक और नरकानन्तर तिर्यंच के लिए हैं।

८२. सतत मूढ़-पुरुष धर्म को नहीं जानता है।

८३. महावीर ने कहा— महामोह में प्रमाद मत करो।

८४. कुशल-पुरुष के लिए प्रमाद से क्या प्रयोजन ?

८५. शान्ति और मरण को संप्रेक्षा करो।

८६. भेउरधम्मं संपेहाए ।

८७. णालं पास ।

८८. अलं ते एएहिं ।

८९. एयं पस्स मुणी ! महब्भयं ।

९०. णाइवाएज्ज कंचणं ।

९१. एस वीरे पसंसिए, जे ण णिव्विज्जइ आयाणाए ।

९२. ण मे देइ ण कुप्पिज्जा, थोवं लद्धुं न खिंसए ।

९३. पडिसेहिओ परिणमिज्जा ।

९४. एयं मोणं समणुवासेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

पंचमो उद्देसो

९५. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्म-समारंभा कज्जंति तं जहा—अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं णाईणं धाईणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए, पुढो पहेणाए, सामासाए, पायरासाए ।

९६. संनिहि-संनिचओ कज्जइ इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए ।

९७. समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी अयं संधि त्ति अदक्खु से णाइए, णाइयावए, ण समणुजाणइ ।

८६. भंगुर-धर्म/शरीर-धर्म की संप्रेक्षा करो।

८७. देख ! ये पर्याप्त नहीं हैं।

८८. इनसे तुम दूर रहो।

८९. हे मुने ! इन्हें महाभय रूप देखो।

९०. किसी का भी अतिपात (वध) मत करो।

९१. वह वीर प्रशंसनीय है, जो आदान [संयम-जीवन] से जुगुप्सा नहीं करता।

९२. मुझे नहीं देता, यह सोचकर क्रोध न करे। थोड़ा प्राप्त होने पर न खीजे।

९३. प्रतिषेध हो, तो लौट जाए।

९४. इस प्रकार मौन की उपासना करे।

पंचम उद्देशक

९५. जिनके द्वारा विविध प्रकार के शस्त्रों से लोक में कर्म-समारम्भ किये जाते हैं, जैसे कि वह अपने पुत्र, पुत्री, वधू, ज्ञातिजन, धाय, राजकर्मचारी, दास, दासी, नौकर, नौकरानी का आदेश देता है — नाना उपहार, सायंकालीन भोजन तथा प्रात:कालीन भोजन के लिए।

९६. वे इस संसार में कुछ लोगों के भोजन के लिए सन्निधि और सन्निचय करते हैं।

९७. वह संयम-स्थित, अनगार, आर्यप्रज्ञ, आर्यदर्शी, अवसर-द्रष्टा, परमार्थ-ज्ञाता अग्राह्य का न ग्रहण करे, न करवाए और न समर्थन करे।

९८. सव्वामगंधं परिण्णाय, णिरामगंधो परिव्वए ।

९९. अदिस्समाणे कय-विक्कएसु । से ण किणे, ण किणावए, किणंतं ण समणुजाणइ ।

१००. से भिक्खू कालण्णे बलण्णे मायण्णे खेयण्णे खणयण्णे विणयण्णे ससमयपर-समयण्णे भावण्णे, परिग्गहं अममायमाणे, कालाणुट्ठाई, अपडिण्णे ।

१०१. दुहओ छेत्ता णियाइ ।

१०२. वत्थं पडिग्गहं, कंबलं पायपुंछणं, उग्गहं च कडासणं एएसु चेव जाएज्जा ।

१०३. लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणेज्जा से जहेयं भगवया पवेइयं ।

१०४. लाभो त्ति न मज्जेज्जा ।

१०५. अलाभो त्ति ण सोयए ।

१०६. बहुं पि लद्धुं ण णिहे ।

१०७. परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा ।

१०८. अण्णहा णं पासए परिहरिज्जा ।

१०९. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

११०. जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि ।

—त्ति बेमि

९८. वह समस्त अशुद्ध आहारों को जानकर निरामगंधी/शाकाहारी/शुद्धाहारी रूप में विचरण करे।

९९. क्रय-विक्रय में अदृश्यमान/अकिंचन होता हुआ वह [अनगार] न तो क्रय करे, न क्रय करवाए और न क्रय करने वाले का समर्थन करे।

१००. वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, स्वसमय-परसमयज्ञ, भावज्ञ, परिग्रह के प्रति अमूर्च्छित, काल का अनुष्ठाता और अप्रतिज्ञ बने।

१०१. वह [राग और द्वेष] दोनों को छेदकर मोक्षमार्गी बने।

१०२. वह वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र, कंबल, पाद-पुंछन, अवग्रह/स्थान और कटासन/आसन—इनकी ही याचना करे।

१०३. अनगार प्राप्त आहार की मात्रा/परिमाण को समझे। जैसा उसे भगवान ने कहा है।

१०४. लाभ होने पर मद न करे।

१०५. अलाभ होने पर शोक न करे।

१०६. बहुत प्राप्त होने पर संग्रह न करे।

१०७. परिग्रह से स्वयं को दूर रखे।

१०८. तत्त्वद्रष्टा अन्यथा-भाव को छोड़ दे।

१०९. यह मार्ग आर्यपुरुषों द्वारा प्रवेदित है।

११०. यथार्थ कुशल-पुरुष [परिग्रह] में लिप्त न हो।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१११. कामा दुरतिक्कमा ।

११२. जीवियं दुप्पडिबूहगं ।

११३. कामकामी खलु श्रयं पुरिसे ।

११४. से सोयइ जूरइ तिप्पइ परितप्पइ ।

११५. श्राययचक्खू लोग-विपस्सी लोगस्स श्रहो भागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ, तिरियं भागं जाणइ ।

११६. गड्ढिए श्रणुपरियट्टमाणे, संधि विदित्ता इह मच्चिएहिं ।

११७. एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए ।

११८. जहा श्रंतो तहा बाहिं, जहा बाहिं तहा श्रंतो ।

११९. श्रंतो श्रंतो पूइ-देहंतराणि पासइ पुढोवि सवंताइं, पंडिए पडिलेहाए ।

१२०. से मइमं परिण्णाय, मा य हु लालं पच्चासी ।

१२१. मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए ।

१२२. कासंकासे खलु श्रयं पुरिसे, बहुमाई ।

१२३. कडेण मूढे पुणो तं करेइ ।

१२४. लोहं वेरं वड्ढेइ श्रप्पणो ।

१२५. जमिणं परिकहिज्जइ, इमस्स चेव पडिवूहणयाए ।

१११. काम दुरतिक्रम है।

११२. जीवन दुष्प्रतिवृंह/वृद्धिरहित है।

११३. यह पुरुष निश्चयतः काम-कामी है।

११४. यह शोक करता है, जीर्ण/ज्वरित होता है, तप्त होता है, परितप्त होता है।

११५. आयतचक्षु/दीर्घदर्शी और लोकविपश्यी लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्वभाग को जानता है, तिर्यक्‌भाग को जानता है।

११६. अनुपरिवर्तन करने वाला गृद्ध-पुरुष इस मृत्युजन्य सन्धि को जानकर [निष्काम बने।]

११७. जो बन्धन से प्रतिमुक्त है, वही वीर प्रशंसित है।

११८. [देह] जैसी भीतर है, वैसी बाहर है; जैसी बाहर है, वैसी भीतर है।

११९. मनुष्य देह के भीतर-से-भीतर अशुचिता देखता है, उसे पृथक्-पृथक् छोड़ता है। पंडित इसका प्रतिलेख/चिन्तन करे।

१२०. वह मतिमान् पुरुष यह जानकर लालसा का प्रत्याशी न बने।

१२१. वह तत्त्व-ज्ञान से स्वयं को विमुख न करे।

१२२. निश्चय ही यह पुरुष [विचार करता है कि] 'मैंने किया या करूँगा।' वह बहुमायावी है।

१२३. वह मूर्ख उस कृतकार्य को वारम्वार करता है।

१२४. वह अपने लोभ और वैर को वढ़ाता है।

१२५. इसीलिए कहा जाता है कि ये [लोभ और वैर] संसार-वृद्धि के लिए हैं।

१२६. अमरा य महासड्ढी, अट्टमेयं पेहाए अपरिण्णाए कंदइ ।

१२७. से तं जाणह जमहं बेमि ।

१२८. तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता।

१२९. अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे, जस्स वि य णं करेइ ।

१३०. अलं बालस्स संगेणं ।

१३१. जे वा से कारेइ बाले ।

१३२. ण एवं अणगारस्स जायइ ।

—त्ति बेमि ।

छट्ठो उद्देसो

१३३. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१३४. तम्हा पावं कम्मं, णेव कुज्जा ण कारवेज्जा ।

१३५. सिया से एगयरं विप्परामुसइ ।

१३६. छसु अण्णयरंसि कप्पइ ।

१३७. सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

१२६. अमरा य महासड्ढी, अट्टमेयं पेहाए अपरिण्णाए कंदइ ।

१२७. से तं जाणह जमहं बेमि ।

१२८. तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता ।

१२९. अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे, जस्स वि य णं करेइ ।

१३०. अलं बालस्स संगेणं ।

१३१. जे वा से कारेइ बाले ।

१३२. ण एवं अणगारस्स जायइ ।

—त्ति बेमि ।

छट्ठो उद्देसो

१३३. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१३४. तम्हा पावं कम्मं, णेव कुज्जा ण कारवेज्जा ।

१३५. सिया से एगयरं विप्परामुसइ ।

१३६. छसु अण्णयरंसि कप्पइ ।

१३७. सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

१३८. तएण विप्पमाएण, पुढो वयं पकुव्वइ ।

१३९. जंसिमे पाणा पव्वहिया, पडिलेहाए णो णिकरणाए ।

१४०. एस परिण्णा पवुच्चइ, कम्मोवसंती ।

१४१. जे ममाइय-मइं जहाइ, से जहाइ ममाइयं ।

१४२. से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइयं ।

१४३. तं परिण्णाय मेहावी ।

१४४. विइत्ता लोगं, वंता लोगसण्णं, से मइमं परक्कमेज्जासि त्ति बेमि ।

१४५. णारइं सहई वीरे, वीरे ण सहई रइं ।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे ण रज्जइ ।

१४६. सद्दे य फासे अहियासमाणे, णिव्विद णंदि इह जीवियस्स,
मुणी मोणं समादाय, धुणे कम्म-सरीरगं ।

१४७. पंतं लूहं सेवंति वीरा समत्तदंसिणो ।

१४८. एस ओहंतरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए, वियाहिए त्ति बेमि ।

१४९. दुव्वसु मुणी अणाणाए ।

१५०. तुच्छए गिलाइ वत्तए ।

१५१. एस वीरे पसंसिए, अच्चेइ लोयसंजोयं ।

१३८. वह स्वयं के प्रति प्रमाद से पृथक-पृथक अवस्थाओं को प्राप्त करता है।

१३९. जिनसे ये प्राणी व्यथित हैं, उन्हें प्रतिलेख करके भी वे निराकरण नहीं कर पाते हैं।

१४०. यह परिज्ञा कही गयी है। इससे कर्म उपशान्त होते हैं।

१४१. जो ममत्व-मति को त्याग करता है, वह ममत्व को त्याग करता है।

१४२. वही दृष्टिपथ मुनि है, जिसके ममत्व नहीं है।

१४३. वही परिज्ञात मेधावी (मुनि) है।

१४४. लोक को जानकर एवं लोक-संज्ञा को छोड़कर वह बुद्धिमान [मुनि] पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१४५. वीर-पुरुष अरति को सहन करता है।
वीर-पुरुष रति को सहन नहीं करता है।
वीर-पुरुष अविमन/निर्विकल्प है, इसलिए वीर-पुरुष रंज नहीं करता है।

१४६. शब्द और स्पर्श को सहन करते हुए मुनि इस जीवन की तुष्टि और जुगुप्सा को मौनपूर्वक देख-परखकर कर्म-शरीर अलग करे।

१४७. समत्वदर्शी वीर-पुरुष नीरस और रूक्ष भोजन का सेवन करते हैं।

१४८. मुनि इस घोर संसार-सागर से तीर्ण, मुक्त एवं विरत कहा गया है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१४९. आज्ञारहित मुनि दुर्वसु/अयोग्य है।

१५०. वह तुच्छ है, कहने में ग्लानि का अनुभव करता है।

१५१. वह वीर प्रशंसनीय है, जो लोक-संयोग को छोड़ देता है।

१५२. एस णाए पवुच्चइ ।

१५३. जं दुक्खं पवेइयं इह माणवाणं, तस्स दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति ।

१५४. इइ कम्मं परिण्णाय सव्वसो ।

१५५. जे अणण्णदंसी, से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ।

१५६. जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ ।।

१५७. अवि य हणे अणाइयमाणे एत्थंपि जाण, सेयंति णत्थि ।

१५८. के यं पुरिसे ? कं च णए ?

१५९. एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु ।

१६०. से सव्वओ सव्वपरिण्णाचारी ।

१६१. ण लिप्पई छणपएण वीरे ।

१६२. से मेहावी अणुग्घायण-खेयण्णे, जे य बंधप्पमोक्खमण्णेसी ।

१६३. कुसले पुण णो बद्धे, णो मुक्के ।

१६४. से जं च आरभे, जं च णारभे ।

१६५. अणारद्धं च णारभे ।

१५२. यह न्याय [लोकनीति] कहलाता है।

१५३. इस संसार में जो दुःख मनुष्यों के लिए कहे गये हैं, उन दुःखों का कुशल [साधक] परिज्ञा (प्रज्ञा) पूर्वक परिहार करते हैं।

१५४. इस प्रकार कर्म सर्व प्रकार से परिज्ञात है।

१५५. जो अनन्यदर्शी (आत्मदर्शी) है, वह अनन्य (आत्मा) में रमण करता है, जो अनन्य (आत्मा) में रमण करता है, वह अनन्यदर्शी (आत्मदर्शी) है।

१५६. जैसा पुण्यात्मा के लिए कथन किया गया है, वैसा ही तुच्छ के लिए कथन किया गया है। जैसा तुच्छ के लिए कथन किया गया है, वैसा ही पुण्यात्मा के लिए कथन किया गया है।

१५७. अनादर होने पर घात करना, इसे श्रेयस्कर न समझे।

१५८. यह पुरुष कौन है? किस नय (दृष्टिकोण) का है।

१५९. वह वीर प्रशंसित है, जो ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक् दिशा में आबद्ध को मुक्त करता है।

१६०. वह सभी ओर से पूर्ण प्रज्ञाचारी है।

१६१. वीर-पुरुष क्षण-भर भी लिप्त नहीं होता है।

१६२. जो बन्ध-मोक्ष का अन्वेषक कर्म का अनुघात करता है, वह मेधावी क्षेत्रज्ञ है।

१६३. कुशल-पुरुष (पूर्ण ज्ञानी) न तो बद्ध है, न मुक्त।

१६४. वह आचरण करता है और आचरण नहीं भी करता।

१६५. अनारब्ध/अनाचीर्ण का आचरण नहीं करता है।

१६६. छणं छणं परिण्णाय, लोगसण्णं च सव्वसो ।

१६७. उद्देसो पासगस्स णत्थि ।

१६८. बाले पुणे णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ ।

—त्ति बेमि

१६६. लोक-संज्ञा सभी ओर से क्षण-क्षण परिज्ञात है।

१६७. तत्त्वद्रष्टा के लिए कोई निर्देश नहीं है।

१६८. परन्तु स्नेह और काम में आसक्त बाल/अज्ञानी-पुरुष दुःख-शमन न करने से दुःखी हैं। वे दुःखों के आवर्त/चक्र में ही अनुपरिवर्तन करते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तइयं अज्झयणं

सीओसणिज्जं

तृतीय अध्ययन

शीतोष्णीय

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय का नाम 'शीतोष्णीय' है। 'शीत' अनुकूलता का परिचय-पत्र है, तो उष्ण प्रतिकूलता का। अनुकूल और प्रतिकूल में साम्य-भाव रखना समत्व-योग है। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में सूर्य की भाँति समरोशनी प्रसारित करने वाला ही महावीर के महापथ का पथिक है।

मनोदीप की निष्कम्पता ही समत्वदर्शन है। 'मैं' वर्तमान हूँ। अतीत और भविष्य में मेरा कम्पन सार्थक नहीं है। वर्तमान का अनुपश्यी ही मन की संचरण-शील वृत्तियों का अनुप्रेक्षण कर सकता है। प्राप्त क्षण की प्रेक्षा करने वाला ही दीक्षित है।

साधक संसार में प्रिय और अप्रिय की विभाजन-रेखाएँ नहीं खींचता। दो आयामों के मध्य, बायें और दायें तट के बीच प्रवहणशील होना सरित्-जल का सन्तुलन है। दो में से एक का चयन करना सन्तुलितता का अतिक्रमण है। चयन-वृत्ति मन की माँ है। समत्व चयन-रहित समदर्शिता है। चुनावरहित सजगता में मन का निर्माण नहीं होता। चयन-दृष्टि ही मन की निर्मात्री है। साधना का प्रथम चरण मन के चांचल्य को समझना है। मनोवृत्तियों को पहचानना और मन की गाँठों को खोजना आत्म-दर्शन की पूर्व भूमिका है। मन तो रोग है। रोग को समझना और उसका निदान पाना स्वास्थ्य-लाभ का सफल चरण है।

सर्वदर्शी महावीर अध्यात्म विद्या के प्रमुख अधिष्ठाता हैं। उन्होंने मन की प्रत्येक वृत्ति का अतल अध्ययन किया है। प्रस्तुत अध्याय साधकों की स्नातक कक्षा में दिया गया उनका अभिभाषण है। उनके अनुसार मनोवृत्तियों का पठन-अध्ययन अप्रमत्त चेता-पुरुष ही कर सकता है।

महावीर की अध्यापन-शैली अत्यन्त विशिष्ट है। वे अध्यात्म के आत्मद्रष्टा दार्शनिक हैं। वे एक के ज्ञान में अनेक का ज्ञान स्वीकार करते हैं। एक मनोवृत्ति को समग्रभाव से पढ़ना वृत्तियों के सम्पूर्ण व्याकरण को निहारना है। मन का

द्रष्टा अपने अस्तित्व का पहरेदार है। द्रष्टाभाव,साक्षीभाव मन के कर्दम से उपरत होकर आत्म-गगन में प्रस्फुटित होने का प्रथम आयाम है।

मन का बिखराव बाह्य जगत के सौजन्य से होता है। इस बिखराव में चेतना दोहरा संघर्ष करती है। पहला संघर्ष चेतना के आदर्श और वासना-मूलक पक्षों में होता है तथा दूसरा उस परिवेश के साथ होता है, जिसमें मनुष्य अपनी इच्छा/वासना की पूर्ति चाहता है। यह संघर्ष ही आत्म-ऊर्जा को विच्छिन्न और कुण्ठित करता है।

'शीतोष्णीय' वह अध्याय है, जो आदर्श और यथार्थ, आभ्यन्तर और वाह्य, गति और स्थिति, व्यक्ति और समाज में सन्तुलन लाने का पाठ पढ़ाता है। विक्षोभ उत्तेजना तथा संवेदना से उत्पन्न होता है। प्रस्तुत अध्याय विक्षोभ-निवारण हेतु समत्व योग को अचूक मानता है।

मनुष्य अनेक चित्तवान है। इसलिए वह अनगिनत चित्तवृत्तियों का समुदाय है। इच्छा चित्तवृत्ति की ही सहेली है। इच्छाओं का भिक्षापात्र दुष्पूर है। इच्छा-पूर्ति के लिए की जाने वाली श्रम-साधना चलनी में जल भरने जैसी विचारणा है। चित्त के नाटक का पटापेक्ष कैसे किया जाये, प्रस्तुत अध्याय यही कौशल सिखाता है।

साधक का धर्म है—चारित्रगत वारीकियों के प्रति प्रतिपग/प्रतिपल जगना। प्रमाद एवं विलासिता की चपेट में आ जाना साधना-पथ में होने वाली दुर्घटना है। वह अप्रमत्त नहीं, घायल है।

साधक महापथ का पांथ है। अप्रमाद उसका न्यास है। मौन मन ही उसके मुनित्व की प्रतिष्ठा है। अप्रमत्तता, अनासक्ति, निष्कषायता, समदर्शिता एवं स्वावलम्बिता के अंगरक्षक साथ हों, तो साधक को कैसा खतरा। आत्म-जागरण का दीप आठों याम ज्योतिर्मान रहे, तो चेतना के गहराव में कहाँ होगा अन्धकार और कहाँ होगा भटकाव!

पढमो उद्देसो

१. सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ।

२. लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं ।

३. समयं लोगस्स जाणित्ता, एत्थ सत्थोवरए ।

४. जस्सिमे सद्दा य रूवा य रसा य गंधा य फासा य अभिसमण्णागया भवंति, से आयवं नाणवं वेयवं धम्मवं बंभवं ।

५. पण्णाणेहिं परियाणइ लोयं, मुणीति वुच्चे ।

६. धम्मविऊ उज्जू आवट्टसोए संगमभिजाणइ ।

७. सीओसिणच्चाई से निग्गंथे अरइ-रइ-सहे फरुसियं णो वेएइ ।

८. जागर-वेरोवरए वीरे एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

९. जरामच्चुवसोवणीए णरे, सययं मूढे धम्मं णाभिजाणइ ।

१०. पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।

११. मंता एयं मइमं ! पास ।

१२. आरंभजं दुक्खमिणंति णच्चा माई पमाई पुणरेइ गब्भं ।

प्रथम उद्देशक

१. सुपुप्त अमुनि है, मुनि सदा जागृत है।

२. लोक में दुःख को अहितकर समझें।

३. लोक के समय [आचार] को जानकर शस्त्र से उपरत हों।

४. जिसको ये शब्द रूप, रस, गंध और स्पर्श भली-भाँति ज्ञात है, वह आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ है।

५. जो लोक को प्रज्ञा से जानता है, वह मुनि कहा जाता है।

६. ऋजु धर्मविद्-पुरुष आवर्त/संसार की परिधि के सम्बन्ध को जानता है।

७. वह शीत-उष्ण का त्यागी निर्ग्रन्थ अरति-रति को सहन करता है, कठोरता का अनुभव नहीं करता है।

८. इस प्रकार जागृत और वैर से उपरत वीर-पुरुष दुःखों से मुक्त होता है।

९. सतत मूढ़ नर जरा और मृत्युवश धर्म को नहीं जानता है।

१०. प्राणी को आतुर देखकर अप्रमत्त रहे।

११. हे मतिमन्! इस तरह मानकर देख।

१२. यह दुःख हिंसज है, ऐसा जानकर मायावी और प्रमादी बारम्बार गर्भ/जन्म प्राप्त करता है।

१३. उवेहमाणो सद्द-रूवेसु उज्जू, माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ ।

१४. अप्पमत्तो कामेहिं, उवरम्रो पावकम्मेहिं, वीरे आयगुत्ते खेयण्णे ।

१५. जे पज्जवज्जाय-सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे,
जे असत्थस्स खेयण्णे, से पज्जवज्जाय-सत्थस्स खेयण्णे ।

१६. अकम्मस्स ववहारो न विज्जइ ।

१७. कम्मुणा उवाही जायइ ।

१८. कम्मं च पडिलेहाए ।

१९. कम्ममूलं च जं छणं, पडिलेहिय सव्वं समायाय, दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ।

२०. तं परिण्णाय मेहावी विइत्ता लोगं, वंता लोगसण्णं ।

२१. से मेहावी परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२२. जाइं च वुड्ढिं च इहज्ज ! पासे भूएहिं जाणे पडिलेह सायं, तम्हा तिविज्जो परमंति णच्चा, समत्तदंसी ण करेइ पावं ।

२३. उम्मुंच पासं इह मच्चिएहिं ।

१३. शब्द और रूप की उपेक्षा करने वाला ऋजु-पुरुष मार की आशंका एवं मृत्यु से मुक्त होता है।

१४. काम से अप्रमत्त, पापकर्म से उपरत, पुरुष वीर, आत्मगुप्त और क्षेत्रज्ञ है।

१५. जो पर्याय की उत्पत्ति का शस्त्र जानता है, वह अशस्त्र को जानता है। जो अशस्त्र को जानता है, वह पर्याय की उत्पत्ति का शस्त्र जानता है।

१६. अकर्म का व्यवहार नहीं रहता है।

१७. कर्म से उपाधियाँ उत्पन्न होती हैं।

१८. कर्म का प्रतिलेख करें।

१९. उसी क्षण कर्म के मूल का प्रतिलेख कर सभी उपायों को ग्रहण करके दोनों अन्तों/तटों [राग और द्वेष] से अदृश्यमान रहे।

२०. वह परिज्ञात मेधावी-पुरुष लोक को जानकर, लोक-संज्ञा का त्याग करे।

२१. वह मेधावी पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२२. हे आर्य ! इस संसार में जन्म और वृद्धि को देख। प्राणियों को समझ एवं उनकी शाता को देख। ये तीन [सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र] विद्याएँ परम हैं, यह जानकर समत्वदर्शी पाप नहीं करता है।

२३. इस संसार में मृत्यु-पाश से उन्मुक्त बनो।

२४. आरंभजीवी उभयाणुपस्सी ।

२५. कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति, संसिच्चमाणा पुणरेंति गब्भं ।

२६. अवि से हासमासज्ज, हंता णंदीति मन्नइ ।

२७. अलं बालस्स संगेणं ।

२८. वेरं वड्ढेइ अप्पणो ।

२९. तम्हा तिविज्जो परमंति णच्चा, आयंकदंसी ण करेइ पावं ।

३०. अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे ।

३१. पलिच्छिंदिया णं णिक्कम्मदंसी एस मरणा पमुच्चइ ।

३२. से हु दिट्ठपहे मुणी ।

३३. लोयंसी परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते,
समिए सहिए सया जए कालकंखी परिव्वए ।

३४. बहुं च खलु पाव-कम्मं पगडं ।

३५. सच्चंसि धिइं कुव्वह ।

३६. एत्थोवरए मेहावी सव्वं पाव-कम्मं झोसइ ।

३७. अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहए पूरित्तए ।

२४. हिंसक पुरुष उभय (शरीर व मन) का अनुपश्यी है।

२५. काम-गृद्ध पुरुष संचय करते हैं और संचय करते हुए पुनः पुनः गर्भ प्राप्त करते हैं।

२६. वह हँसी में भी हनन करके आनन्द मानता है।

२७. बालक (मूढ़) की संगति से क्या प्रयोजन ?

२८. वह अपना वैर बढ़ाता है।

२९. ये तीन [सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र] विद्याएँ परम हैं, यह जानकर आतंकदर्शी/आत्मदर्शी पाप नहीं करता है।

३०. धीर-पुरुष अग्र [घाती कर्म] और मूल [मिथ्यात्व] का त्याग करे।

३१. कर्म-छेदन करने वाला निष्कर्मदर्शी है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

३२. वही पथद्रष्टा मुनि है।

३३. लोक में परमदर्शी, विविक्त जीवी, समत्वयोगी उपशान्त, समितिसहित, सदा विजयी, कालकांक्षी (समाधिमरणाकांक्षी) होकर परिव्रजन करता है।

३४. निश्चय ही बहुत से पापकर्म किये गये हैं।

३५. सत्य में धृति करो।

३६. इस [सत्य] में रत रहने वाला मेधावी पुरुष समस्त पाप-कर्मों का शोषण कर डालता है।

३७. निश्चय ही यह पुरुष अनेक चित्तवान है। वह केतन/चलनी को पूरना/भरना चाहता है।

३८. से अण्णवहाए अण्णपरियावाए अण्णपरिग्गहाए, जणवयवहाए जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए।

३९. आसेवित्ता एयमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिया।

४०. तम्हा तं बिइयं णो सेवए णिस्सारं पासिय णाणी।

४१. उववायं चवणं णच्चा। अणण्णं चर माहणे!

४२. से ण छणे ण छणावए, छणंतं णाणुजाणइ।

४३. णिव्विद णंदि अरए पयासु।

४४. अणोमदंसी णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।

४५. कोहाइमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं।
तम्हा हि वीरे विरए वहाओ, छिंदेज्ज सोयं लहुभूय-गामी॥

४६. गंथं परिण्णाय इहज्जेव वीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दंते।
उम्मज्ज लद्धुं इह माणवेहिं, णो पाणिणं पाणे समारंभेज्जासि॥

—त्ति बेमि

तइओ उद्देसो

४७. संधिं लोगस्स जाणित्ता, आयओ बहिया पास।

३८. वह दूसरों का वध, दूसरों को परिताप, दूसरों का परिग्रह, जनपद का वध, जनपद को परिताप, जनपद का परिग्रह [करना चाहता है।]

३९. इस अर्थ का सेवन करके वह वेग/संसार-प्रवाह में उपस्थित है।

४०. इसलिए ज्ञानी पुरुष इसे निस्सार देखकर दूसरी बार सेवन न करे।

४१. उत्पाद और च्यवन को जानकर तत्त्वद्रष्टा अनन्य (ध्रौव्य) का आचरण करे।

४२. वह न तो क्षय करे, न क्षय करवाए और न ही क्षय करने वाले का समर्थन करे।

४३. प्रजा की जुगुप्सा एवं आनन्द में अरत बनें।

४४. अनुपमदर्शी पापकर्मो से दूर रहे।

४५. वीर-पुरुष क्रोध एवं मान का हनन करे। लोभ को महान् नरक समझे। इसलिए वीर-पुरुष वध से विरत रहे। लघुभूतगामी-पुरुष (साम्यभावी) शोक का छेदन करे।

४६. इन्द्रियविजयी वीर-पुरुष ग्रन्थियों को जानकर, शोक को जानकर विचरण करे। इस मनुष्य-जन्म में उन्मज्ज/कच्छपवत् इन्द्रिय-संयमी होकर प्राणियों के प्राणों का वध न करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४७. लोक की सन्धि को जानकर बाह्य (जगत) को आत्मवत देख।

४८. तम्हा ण हंता ण विघायए ।

४९. जमिणं अण्णमण्णावइगिच्छाए पडिलेहाए ण करेइ पावं कम्मं, किं तत्थ मुणी कारणं सिया ?

५०. समयं तत्थुवेहाए, अप्पाणं विप्पसायए ।

५१. अणण्णपरमं नाणी, णो पमाए कयाइ वि ।

५२. आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाए जावए ।

५३. विरागं रूवेहिं गच्छेज्जा, महया खुड्डएहिं वा ।

५४. आगइं गइं परिण्णाय, दोहिं वा अंतेहिं अदिस्समाणे ।
से ण छिज्जइ ण भिज्जइ ण डज्झइ, ण हम्मइ कंचणं सव्वलोए ।।

५५. अवरेण पुव्वं ण सरंति एगे, किमस्सईअं ? किं वागमिस्सं ?
भासंति एगे इह माणवा उ, जमस्सईअं आगमिस्सं ।।

५६. णाईअमट्ठं ण य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ ।
विधूय-कप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी ।।

५७. का अरई ? के आणंदे ? एत्थंपि अग्गहे चरे ।

५८. सव्वं हासं परिच्चज्ज, आलीण-गुत्तो परिव्वए ।

५९. पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?

६०. जं जाणेज्जा उच्चालइयं, तं जाणेज्जा दूरालइयं ।
जं जाणेज्जा दूरालइयं, तं जाणेज्जा उच्चालइयं ।।

४८. इसलिए न मारे, न घात करे।

४९. जो एक दूसरे को चिकित्सिक की तरह प्रतिलेख (परीक्षण) करके पाप कर्म नहीं करता है, क्या यह मुनि-पद का कारण है ?

५०. समता का प्रेक्षक आत्मा को प्रसन्न करे, निर्मल करे।

५१. अनन्य परम ज्ञानी (आत्मज्ञ) कभी भी प्रमाद न करे।

५२. आत्म-गुप्त वीर सदा यात्रा की मात्रा (संयम) का उपयोग करे।

५३. महान या क्षुद्र रूपों से विराग करे।

५४. आगति और गति को जानकर दोनों ही अन्तों (राग-द्वेष) से अदृश्यमान होता हुआ वह ज्ञानी सम्पूर्ण लोक में किसी तरह से न तो छेदा जाता है, न भेदा जाता है, न जलाया जाता है, न मारा जाता है।

५५. कुछ लोग अतीत और भविष्य का स्मरण नहीं करते। कुछ मनुष्य कहते हैं कि अतीत में क्या हुआ और भविष्य में क्या होगा ?

५६. तथागत को न तो अतीत से प्रयोजन है, न भविष्य से प्रयोजन है। विधूत-कल्पी महर्षि इनका अनुपश्यी बने। वह इन्हें धुनकर क्षय करे।

५७. क्या अरति है, क्या आनन्द है ? इन्हें ग्रहण किये बिना विचरण करे।

५८. आलीन-गुप्त (त्रिगुप्त) पुरुष सभी प्रकार के हास्य का परित्याग कर परिव्रजन करे।

५९. हे पुरुष ! तुम ही तुम्हारे मित्र हो। फिर बाहरी मित्र की इच्छा क्यों करते हो !

६०. जो उच्चालय (जीवात्मा) को जानता है, वह दूरालय (परमात्मा) को जानता है। जो दूरालय (परमात्मा) को जानता है, वह उच्चालय (जीवात्मा) को जानता है।

६१. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

६२. पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि ।

६३. सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरइ ।

६४. सहिए धम्ममादाय, सेयं समणुपस्सइ ।

६५. दुहओ जीवियस्स, परिवंदण-माणण-पूयणाए, जंसि एगे पमादेंति ।

६६. सहिए दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए ।

६७. पासिमं दविए लोयालोय-पवंचाओ मुच्चइ ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

६८. से वंता कोहं च, माणं च, मायं च, लोभं च ।

६९. एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स ।

७०. आयाणं सगडब्भि ।

७१. जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ।

७२. सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं ।

६१. हे पुरुष ! आत्मा का ही अभिनिग्रह कर। ऐसा करने से तू दुःखों से छूट जाएगा।

६२. हे पुरुष ! सत्य को ही जान।

६३. जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित है, वह मेधावी मार/मृत्यु से तर जाता है।

६४. वह धर्मयुक्त होकर श्रेय का अनुपश्यन करता है।

६५. जीवन को [राग और द्वेष से] विहत करने वाले कुछ साधक परिवन्दन, मान और पूजा के लिए प्रमाद करते हैं।

६६. दुःख-मात्रा से स्पृष्ट साधक झुंझलाहट न करे।

६७. द्रव्य-द्रष्टा (तत्त्व-द्रष्टा) लोक-अलोक के प्रपंच से मुक्त हो जाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६८. वह क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करने वाला है।

६९. यह शस्त्र से उपरत और कर्म से परे द्रष्टा का दर्शन है।

७०. गृहीत कर्मों का भेदन करता है।

७१. जो एक [तत्त्व] को जानता है, वह सब [तत्सम्बन्धित गुणों] को जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।

७२. प्रमत्त को सभी ओर से भय है, अप्रमत्त को सभी ओर से भय नहीं है।

७३. जे एगं नामे, से बहुं नामे,
जे बहुं नामे, से एगं नामे ।

७४. दुक्खं लोयस्स जाणित्ता, वंता लोगस्स संजोगं, जंति धीरा महाजाणं ।

७५. परेण परं जंति ।

७६. नावकंखंति जीवियं ।

७७. एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ,
पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ ।

७८. सड्ढी आणाए मेहावी ।

७९. लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुओभयं ।

८०. अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं ।

८१. जे कोहदंसी से, माणदंसी ।
जे माणदंसी से, मायदंसी ।
जे मायदंसी से, लोभदंसी ।
जे लोभदंसी से, पेज्जदंसी ।
जे पेज्जदंसी से, दोसदंसी ।
जे दोसदंसी से, मोहदंसी ।
जे मोहदंसी से, गब्भदंसी ।
जे गब्भदंसी से, जम्मदंसी ।
जे जम्मदंसी से, मारदंसी ।
जे मारदंसी से, निरयदंसी ।
जे निरयदंसी से, तिरियदंसी ।
जे तिरियदंसी से, दुक्खदंसी ।

७३. जो एक को नमाता है, वह बहुतों को नमाता है।
जो बहुतों को नमाता है, वह एक को नमाता है।

७४. धीर-पुरुष लोक के दुःख को जानकर, लोक के संयोग का वमन कर महा-यान को प्राप्त करते हैं।

७५. वे श्रेय से श्रेय की ओर जाते हैं।

७६. वे जीवन की आकांक्षा नहीं करते।

७७. एक (कर्म/कषाय) का क्षय करने वाला अनेक (कर्मों/कषायों) का क्षय करता है। अनेक का क्षय करने वाला एक का क्षय करता है।

७८. आज्ञा में श्रद्धा करने वाला मेधावी है।

७९. आज्ञा से लोक को जानकर पुरुष भय-मुक्त हो जाता है।

८०. शस्त्र तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण हैं। अशस्त्र तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण नहीं है।

८१. जो क्रोधदर्शी है, वह मानदर्शी है।
जो मानदर्शी है, वह मायादर्शी है।
जो मायादर्शी है, वह लोभदर्शी है।
जो लोभदर्शी है, वह प्रेम/रागदर्शी है।
जो प्रेम/रागदर्शी है, वह द्वेषदर्शी है।
जो द्वेषदर्शी है, वह मोहदर्शी है।
जो मोहदर्शी है, वह गर्भदर्शी है।
जो गर्भदर्शी है, वह जन्मदर्शी है।
जो जन्मदर्शी है, वह मृत्युदर्शी है।
जो मृत्युदर्शी है, वह नरकदर्शी है।
जो नरकदर्शी है, वह तिर्यंचदर्शी है।
जो तिर्यंचदर्शी है, वह दुःखदर्शी है।

८२. से मेहावी अभिनिवट्टेज्जा कोहं च, माणं च, मायं च, लोहं च, पेज्जं च, दोसं च, मोहं च, गब्भं च, जम्मं च, मारं च, नरगं च, तिरियं च, दुक्खं च।

८३. एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स।

८४. आयाणं णिसिद्धा सगडब्भि।

८५. किमत्थि उवाही पासगस्स ण विज्जइ ?
णत्थि।

—त्ति बेमि।

८२. वह मेधावी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम/राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मार/मृत्यु, नरक, तिर्यंच और दुःख से निवृत हो।

८३. यह शस्त्र-उपरत और कर्म-द्रष्टा का दर्शन है।

८४. गृहीत को रोककर भेदन करे।

८५. क्या द्रष्टा की कोई उपाधि है या नहीं ?
नहीं है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चउत्थं अज्झयणं

सम्मत्तं

चतुर्थ अध्ययन

सम्यक्त्व

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'सम्यक्त्व' है। अध्याय की दृष्टि से यह चौथा चरण है, किन्तु अध्यात्म की दृष्टि से पहला। यह अर्हत्-दर्शन की वर्णमाला का प्रथम अक्षर है। यही जैनत्व की अभिव्यक्ति है। यह वह चौराहा है, जिसमें अध्यात्म-जगत के कई राज-मार्ग मिलते हैं। अतः सम्यक्त्व के लिए पराक्रम करना महावीर के महापथ का अनुगमन/अनुमोदन है।

'सम्यक्त्व' साधुता और ध्रुवता की दिव्य आभा है। सम्यक्त्व और साधुता के मध्य कोई द्वैत-रेखा नहीं है। साधु सम्यक्त्व के बल पर ही तो संसार की चार-दिवारी को लाँघता है। इसलिए सम्यक्त्व साधु के लिए सर्वोपरि है।

सत्यदर्शी महावीर सम्यक्त्व की ही पहल करते हैं। उनकी दृष्टि में सम्यक्त्व विशेषणों का विशेषण है, आभूषणों का भी आभूषण है। यह सत्य की गवेषणा है। साधक आत्म-गवेषी है। आत्मा ही उसके लिए परम-सत्य है। इसलिए सम्यक्त्व साधक का सच्चा व्यक्तित्व है। उसकी आँखों में सदा अमरता की रोशनी रहती है। कालजयी क्षणों में जीने के लिए ही उसका जीवन समर्पित है। कालजयता के लिए अस्तित्व का अभिज्ञान अनिवार्य है। अस्तित्व शाश्वत का घरेलु नाम है। सम्यक्त्व उस शाश्वत की ही पहिचान है।

सम्यक्त्व आत्म-विकास की प्राथमिक कक्षा है। वस्तु-स्वरूप के बोध का नाम सम्यक्त्व है। बिना सम्यक्त्व के साधक वस्तु मात्र की अस्मिता का सम्मान कैसे करेगा? पदार्थों का श्रद्धान कैसे किलकारियाँ भर सकेगा? अहिंसा और करुणा कैसे संजीवित हो पायेगी? अध्यात्म की स्नातकोत्तर सफलताओं को अर्जित करने के लिए सम्यक्त्व की कक्षा में प्रवेश लेना अपरिहार्य है।

साधक की सबसे बड़ी सम्पदा सम्यक्त्व ही है। आत्म-समीक्षा के वातावरण में इसका पल्लवन होता है। सम्यक्त्व अन्तर्दृष्टि है। इसका विमोचन बहिर्दृष्टियों को संतुलित मार्गदर्शन है। फिर वे सत्य का आग्रह नहीं करतीं, अपितु सत्य का ग्रहण करती हैं। माटी-सोना, हर्ष-विषाद के तमाम द्वन्द्वों से वे उपरत हो जाती

हैं। इसी से प्रवर्तित होती है सत्य की शोध-यात्रा। बिना सम्यक्त्व के अध्यात्म-मार्ग की शोभा कहाँ? भला, ज्वर-ग्रस्त को माधुर्य कभी रसास्वादित कर सकता है। असम्यक्त्व/मिथ्यात्व जीवन का ज्वर नहीं तो और क्या है? सचमुच, जिसके हाथ में सम्यक्त्व की मशाल है, उसके सारे पथ ज्योतिर्मय हो जाते हैं।

प्रस्तुत अध्याय संयमित एवं संवरित होने की प्रेरणा देता है। जिसने मन, वचन और काया के द्वार बन्द कर लिए हैं, वही सत्य का पारदर्शी और मेधावी साधक है। उसे इन द्वारों पर अप्रमत्त चौकी करनी होती है। उसकी आँखों की पुतलियाँ अन्तर्जगत के प्रवेश-द्वार पर टीकी रहती है। बहिर्जगत के अतिथि इसी द्वार से प्रवेश करते हैं। अयोग्य और अनचाहे अतिथि द्वार खटखटाते जरूर हैं, किन्तु वह तमाम दस्तकों के उत्तर नहीं देता, मात्र सम्यक्त्व की दस्तक सुनता है। वह उन्हीं लोगों की अगवानी करता है, जिससे उसके अंतर-जगत का सम्मान और गौरव वर्धन हो।

अस्तित्व का समग्र व्यक्तित्व सम्यक्त्व की खुली खिड़की से ही अवलोक्य है। अध्यात्म का अध्येता सम्यक्त्व से अपरिचित रहे, यह संभव नहीं है। व्यक्ति के सुषुप्त विवेक में हरकत पैदा करने वाला एकमात्र सम्यक्त्व ही है। यथार्थता का तट, सम्यक्त्व का द्वीप मिथ्यात्व के पार है। हृदय-शुद्धि, अहिंसा, संवर, कषाय-निग्रह एवं संयम की पतवारों के सहारे असद्-सागर को पार किया जा सकता है।

स्वस्थ मन के मंच पर ही अध्यात्म के आसन की बिछावट होती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए मन की निरोगिता आवश्यक है और मन की निरोगिता के लिए कषायों का उपवास उपादेय है। विषयों से स्वयं की निवृत्ति ही उपवास का सूत्रपात है। क्षमा, नम्रता और संतोष के द्वारा मन को स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्याय अनुत्तरयोगी महावीर के अनुभवों की अनुगूँज है। सम्यक्त्व का सिद्धान्त सत्य की न्याय-तुला है। जीवन की मौलिकताओं और नैतिक प्रतिमानों को उज्ज्वलतर बनाने के लिए यह सिद्धान्त अप्रतिम सहायक है। सचमुच, जिसके हाथ सम्यक्त्व-प्रदीप से शून्य हैं, वह मानो चलता-फिरता 'शव' है, अँधियारी रात में दिग्भ्रान्त-पान्थ है। साधक के कदम बढ़ें जिन-मग पर, अन्धकार से प्रकाश की ओर। मुक्त हो जीवन की उज्ज्वलता, मिथ्यात्व की अँधेरी मुट्ठी से।

पढमो उद्देसो

१. से बेमि—

जे अईया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमेस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खंति, एवं भासंति. एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा।

२. एस धम्मे सुद्धे।

३. णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

४. तं जहा—

उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा, तच्चं चेयं।

५. तहा चेयं, अस्सिं चेयं पवुच्चइ।

६. तं आइत्तु ण णिहे ण णिक्खिवे, जाणित्तु धम्मं जहा तहा।

७. दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा।

८. णो लोगस्सेसणं चरे।

प्रथम उद्देशक

१. वही मैं कहता हूँ—

जो अतीत, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) और भविष्य के अर्हन्त भगवन्त हैं, वे सभी इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार भाषण करते हैं, इस प्रकार प्रज्ञापन करते हैं, प्ररूपित करते हैं कि सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव, सभी सत्वों का न हनन करना चाहिये, न आज्ञापित करना चाहिये, न परिगृहीत करना चाहिये, न परिताप देना चाहिये, न उत्पाद/प्राण-व्यपरोपण करना चाहिये।

२. यह शुद्ध धर्म है।

३. लोक को नित्य, शाश्वत जानकर खेदज्ञों (ज्ञानियों) के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है।

४. जैसे कि—

उत्थित होने पर या अनुत्थित होने पर, दंड से उपरत होने पर अथवा दंड से अनुपरत होने पर, सोपाधिक होने पर अथवा अनोपाधिक होने पर, संयोगरत होने पर अथवा असंयोगरत होने पर, यह तत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

५. जैसा तथ्य है, वैसा प्ररूपित किया गया।

६. उस धर्म को यथातथ्य ग्रहण कर एवं जानकर न स्निग्ध हो न विक्षिप्त।

७. दृष्ट कैसे निर्वेद रहे!

८. लोकैषणा न करे।

९. जस्स णत्थि इमा जाई, अण्णा तस्स कओ सिया ?

१०. दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं, जमेयं परिकहिज्जइ ।

११. समेमाणा पलेमाणा, पुणो-पुणो जाइं पकप्पेंति ।

१२. अहो य राओ य जयमाणे, धीरे सया आगयपण्णाणे ।
पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्ते सया परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

१३. जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा,
जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा ।
—एए पए संबुज्झमाणे, लोयं च आणाए अभिसमेच्चा पुढो पवेइयं ।

१४. आघाइ णाणी इह माणवाणं संसारपडिवण्णाणं संबुज्झमाणाणं विण्णाणपत्ताणं ।

१५. अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता, अहासच्चमिणं त्ति बेमि ।

१६. नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि, इच्छापणीया वंकाणिकेया ।
कालग्गहीआ णिचए णिविट्ठा, पुढो-पुढो जाइं पकप्पयंति ।

१७. इहमेगेसिं तत्थ-तत्थ संथवो भवइ ।

९. जिसे यह जाति (लोकैषणा-बुद्धि) नहीं है, उसके लिए अन्य क्या है ?

१०. जो यह कहा जाता है वह दृष्ट, श्रुत, मत और विज्ञात है।

११. आसक्त एवं लीन होने वाले पुरुष पुनः पुनः उत्पन्न होते रहते हैं।

१२. रात-दिन प्रयत्नशील धीर-पुरुष आगत प्रज्ञा से प्रमत्त को सदा बहिर्मुख देखे और सदा अप्रमत्त होकर पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

१३. जो आस्रव हैं, वे परिस्रव हैं। जो परिस्रव हैं, वे आस्रव हैं।
जो अनास्रव हैं, वे अपरिस्रव हैं। जो अपरिस्रव हैं, वे अनास्रव हैं।
—इस पद का ज्ञाता लोक को आज्ञा से जानकर पृथक-पृथक प्रवेदित करे।

१४. संसार-प्रतिपन्न, संबुध्यमान, विज्ञान-प्राप्त मनुष्यों के लिए यह उपदेश दिया है।

१५. प्राणी आर्त भी हैं और प्रमत्त भी। यह यथासत्य है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१६. मृत्यु-मुख के नाना मार्ग हैं — इच्छा-प्रणीत, वंकानिकेत/कुटिल, कालगृहीत एवं संग्रह-निविष्ट। [इन मार्गों पर चलने वाला] पृथक्-पृथक जातियों/जन्मों को प्राप्त करता है।

१७. इस संसार में कुछ लोगों के लिए उन स्थानों के प्रति मानो संस्तव/लगाव होता है।

१८. अहोववाइए फासे पडिसंवेयंति ।

१९. चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, चिट्ठं परिचिट्ठइ ।

२०. अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, णो चिट्ठं परिचिट्ठइ ।

२१. एगे वयंति अदुवा वि णाणी ?
णाणी वयंति अदुवा वि एगे ?

२२. आवंती केयावंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति—से दिट्ठं च णे, सुयं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेयव्वा परिघेत्तव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, अणारियवयणमेयं ।

२३. तत्थ जे आरिया, ते एवं वयासी—से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुयं च भे, दुम्मयं च भे, दुव्विण्णायं च भे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे, जं णं तुब्भे एवं आइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, अणारिय-वयणमेयं ।

२४. वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं परूवेमो, एवं पण्णवेमो—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, आरियवयणमेयं ।

१८. वे औपपातिक-स्पर्श का प्रतिसंवेदन करते हैं।

१९. क्रूर कर्मों में स्थित पुरुष उन स्थानों में ही स्थित होता है।

२०. क्रूर कर्मों में अस्थित पुरुष उन स्थानों में स्थित नहीं होता है।

२१. यह और कोई कहता है या ज्ञानी भी ?
ज्ञानी कहते हैं अथवा और कोई भी ?

२२. लोक में कुछेक श्रमण और ब्राह्मण अलग-अलग विवाद करते हैं। वह मैंने देखा, मैंने सुना, मैंने मान्य किया और मैंने विज्ञात किया है। ऊर्ध्व, अधो, सभी दिशाओं में प्रतिलेखित किया है कि सभी प्राणी, सभी जीव, सभी भूत, सभी सत्त्वों का हनन करना चाहिये, आज्ञापित करना चाहिये, परिघात करना चाहिये, परिताप करना चाहिये और विमोचन करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है, ऐसा समझें। यह अनार्यों का वचन है।

२३. इनमें जो आर्य हैं उन्होंने ऐसा कहा — वह तुम्हारे लिए दुर्दिष्ट है, तुम्हारे लिए दुःश्रुत है, तुम्हारे लिए दुर्मान्य है और तुम्हारे लिए दुर्विज्ञात है। ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् सभी दिशाओं में तुम्हारे लिए दुष्प्रतिलेख है। यदि तुम ऐसा आख्यान करते हो, ऐसा भाषण करते हो, ऐसा प्ररूपित करते हो, ऐसा प्रज्ञापित करते हो — सभी जीव, सभी भूत, सभी सत्त्व का हनन करना चाहिये, आज्ञापित करना चाहिये, परिघात करना चाहिये, परिताप करना चाहिये और विमोचन करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है ऐसा समझें। यह अनार्यों का वचन है।

२४. पुनः हम सब इस प्रकार आख्यान करते हैं, इस प्रकार भाषण करते हैं, इस प्रकार प्ररूपण करते हैं, इस प्रकार प्रज्ञापित करते हैं कि सभी प्राणियों, सभी जीवों, सभी भूतों, सभी सत्त्वों का न हनन करना चाहिये, न आज्ञापित करना चाहिये, न परिघात करना चाहिये, न परिताप करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है, ऐसा समझें। यह आर्यवचन है।

२५. पुव्वं निकाय समयं पत्तेयं पुच्छिस्सामो—हंभो पवाइया ! किं भे सायं दुक्खं असायं ?

२६. समिया पडिवण्णे यावि एवं बूया—सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ।

—त्ति बेमि ।

तइओ उद्देसो

२७. उवेहि एणं बहिया य लोयं, से सव्वलोगंमि जे केइ विण्णू ।
अणुवीइ पास णिक्खित्तदंडा, जे केइ सत्ता पलियं चयंति ।।

२८. णरा मुयच्चा धम्मविउत्ति अंजू ।

२९. आरंभजं दुक्खमिणंति णच्चा, एवमाहु संमत्तदंसिणो ।

३०. ते सव्वे पावाइया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति ।

३१. इय कम्मं परिण्णाय सव्वसो ।

३२. इह आणाकंखी पंडिए अणिहे एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं ।

३३. जहा जुण्णाइं कट्ठाइं, हव्ववाहो पमत्थइ एवं अत्तसमाहिए अणिहे ।

२५. सर्वप्रथम प्रत्येक समय (सिद्धान्त) को जानकर मैं पूछूंगा हे प्रवादी ! तुम्हारे लिए शाता दुःख है या अशाता ?

२६. समता प्रतिपन्न होने पर उन्हें ऐसा कहना चाहिये—
सभी प्राणियों, सभी जीवों, सभी भूतों और सभी सत्त्वों के लिए असाता अपरिनिर्वाण (अनिष्ट) महाभय रूप दुःख है।
—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

२७, वाह्य लोक की उपेक्षा कर। जो कोई ऐसा करता है, वह सम्पूर्ण लोक में विष्णु/विज्ञ होता है। अनुवीची/अनुचिन्तन करके देख—हिंसा का त्याग करने वाला जीव ही पलित/कर्म को क्षीण करता है।

२८. मृत/मुक्त-पुरुष की अर्चा करने वाला धर्मविद् एवं ऋजु है।

२९. यह दुःख हिंसज है, ऐसा जाननेवाला समत्वदर्शी कहा गया है।

३०. वे सभी कुशल प्रवचनकार दुःख की परिज्ञा को कहते हैं।

३१. इस प्रकार सभी ओर से कर्म परिज्ञात हैं।

३२. इस संसार में आज्ञाकांक्षी पंडित अस्निग्ध/रागरहित एक ही आत्मा की संप्रेक्षा करता हुआ शरीर को धुने, स्वयं को कसे, अपने को जर्जर करे।

३३. जिस प्रकार जीर्ण काष्ठ को अग्नि जला देती है, उसी प्रकार आत्म-समाहित पुरुष राग रहित होता है।

३४. विगिंच कोहं अविकंपमाणे, इमं णिरुद्धाउयं संपेहाए दुक्खं च जाण अदुवागमेस्सं ।

३५. पुढो फासाइं च फासे, लोयं च पास विप्फंदमाणं ।

३६. जे णिव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं, अणियाणा ते वियाहिया, तम्हा अइविज्जो णो पडिसंजलिज्जासि ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

३७. आवीलए पवीलए निप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं, हिच्चा उवसमं ।

३८. तम्हा अविमणे वीरे सारए समिए सहिए सया जए ।

३९. दुरणुचरो मग्गो वीराणं अणियट्टगामीणं ।

४०. विगिंच मंस-सोणियं ।

४१. एस पुरिसे दविए वीरे ।

४२. आयाणिज्जे वियाहिए, जे धुणाइ समुस्सयं, वसित्ता बंभचेरंसि ।

४३. णेत्तेहिं पलिच्छिण्णेहिं, आयाणसोय-गढिए बाले ।

४४. अव्वोच्छिण्णबंधणे, अणभिक्कंतसंजोए ।

३४. इस आयु के निरोध की संप्रेक्षा कर निष्कम्प होता हुआ क्रोध को छोड़ एवं अनागत दुःखों को जान।

३५. विभिन्न फासों/जालों में फँसे हुए विस्पन्दमान/स्वच्छन्दी लोक को देख।

३६. जो पापकर्मों से निवृत्त हैं, वे अनिदान कहे गये हैं। अतः प्रबुद्ध-पुरुष संज्वलित न हों।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

३७. पूर्व संयोग को छोड़कर, उपशम को ग्रहण कर [शरीर को] आपीड़ित, प्रपीड़ित तथा निष्पीड़ित करे।

३८. इसलिए अविमन वीर-पुरुष सदा सार तत्त्व में समिति-सहित विजयी बने।

३९. अनिवृतगामियों के लिए वीरों का मार्ग दुष्चर है।

४०. मांस एवं रुधिर को छोड़।

४१. यह पुरुष द्रविक/दयालु एवं वीर है।

४२. जो ब्रह्मचर्य में वास करके शरीर को धुनता है, वह आज्ञापित कहा गया है।

४३. नेत्र-विषयों में आसक्त एवं आगत स्रोतों में गृद्ध पुरुष बाल है।

४४. वह बन्धन-मुक्त नहीं है, संयोग-रहित नहीं है।

४५. तंमंसि अवियाणओ आणाए लंभो णत्थि ।

—त्ति बेमि ।

४६. जस्स णत्थि पुरा पच्छा, मज्झे तस्स कुओ सिया ?

४७. से हु पण्णाणमंते बुद्धे आरंभोवरए, सम्ममेयंति ।

४८. पासह जेण बंधं वहं घोरं, परियावं च दारुणं ।

४९. पलिच्छिंदिय बाहिरगं च सोयं, णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं, कम्माणं सफलं दट्ठुं, तओ णिज्जाइ वेयवी ।

५०. जे खलु भो ! वीरा समिया सहिया सया जया संघडदंसिणो आओवरया ।

५१. अहा-तहं लोयं ।

५२. उवेहमाणा, पाईणं पडीणं दाहिणं उईणं इय सच्चंसि परिचिट्ठिंसु ।

५३. साहिस्सामो णाणं वीराणं समियाणं सहियाणं सया जयाणं संघडदंसिणं आओवरयाणं अहातहं लोयं ।

५४. समुवेहमाणाणं किमत्थि उवाही ?

५५. पासगस्स ण विज्जइ ?
णत्थि ।

—त्ति बेमि ।

४५. अविज्ञायक/अज्ञानी-पुरुष अन्धकार में पड़ा हुआ आज्ञा का लाभ नहीं ले सकता।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

४६. जिसका पूर्व-पश्च नहीं है, उसका मध्य क्या होगा ?

४७. जो सम्यक्त्व को खोजता है, वही प्रज्ञावान, बुद्ध और हिंसा से उपरत है।

४८. तू देख! जिसके कारण बन्ध, घोर वध, और दारुण परिताप होता है।

४९. इस मृत्युलोक में निष्कर्मदर्शी वेदज्ञ-पुरुष बाहरी स्रोतों को आच्छादित करता हुआ कर्मों के फल को देखकर निवृत्त हो जाता है।

५०. अरे, वे ही पुरुष हैं, जो समितिसहित, सदा विजयी, संघटदर्शी/सम्यक्त्वदर्शी, आत्म-उपरत है।

५१. लोक यथास्थित है।

५२. पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर की उपेक्षा करता हुआ सत्य में स्थित रहे।

५३. मैं वीर, समिति-सहित, विजयी, संघटदर्शी एवं आत्म-उपरत पुरुषों के ज्ञान को कहूँगा।

५४. यथास्थित लोक की उपेक्षा करने वालों के लिए उपाधि से क्या प्रयोजन ?

५५. तत्त्वद्रष्टा के लिए [उपाधि से प्रयोजन] है या नहीं ?
नहीं है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचमं अज्झयणं

लोगसारो

पंचम अध्ययन

लोकसार

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'लोकसार' है। धर्म/ज्ञान/संयम/निर्वाण ही निखिल लोक का नवनीत है। आत्मा की मौलिकताएँ प्रच्छन्न हैं। उन्हें अनावरित एवं निरभ्र करना ही प्रस्तुत अध्याय का अन्तर्स्वर है। अतः यह अध्याय आत्महितैषी पुरुष का व्यक्तित्व है, अध्यात्म की गुणवत्ता का आकलन है।

अध्यात्म आत्म-उपलब्धि का अनुष्ठान है। अनुष्ठाता को स्वयं का दीपक स्वयं को ही बनना पड़ता है। 'स्वयं' 'अन्य' का ही एक अंग है। अतः दूसरों में स्वयं की और स्वयं में दूसरों की प्रतिध्वनि सुनना अस्तित्व का अभिनन्दन है। दूसरों में स्वयं का अवलोकन ही अहिंसा का विज्ञान है। सम्पूर्ण अस्तित्व का अन्तर्सम्बन्ध है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव में भी हमारी जैसी आत्मचेतना है। अतः किसी को दुःख पहुँचाना स्वयं के लिए दुःख का निर्माण करना है। सुख का वितरण करना अपने लिए सुख का निमन्त्रण है। जीव का वध अपना ही वध है। जीव की करुणा अपनी ही करुणा है। अतः अहिंसा का अनुपालन स्वयं का संरक्षण है।

अहिंसा और निर्विकारिता का नाम ही अध्यात्म है। साधक अध्यात्म का अध्येता होता है। अतः हिंसा और विकारों से उसकी कैसी मैत्री! विकार/वासना/भोग-सम्भोग स्वयं की अ-ज्ञान दशा है। साधक तो 'आगमचक्षु/ज्ञानचक्षु' कहा जाता है, अतः इनका अनुगमन अन्धत्व का समर्थन है।

प्रस्तुत अध्याय अप्रमाद का मार्ग दरशाता है। साधक का परिचय-पत्र अप्रमाद ही है। अप्रमाद और अपरिग्रह दोनों जुड़वा हैं। भगवान् ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है। मूर्च्छा का ही दूसरा नाम प्रमाद है। प्रमाद हिंसा का स्वामी है। अतः मूर्च्छा से उपरत होना अध्यात्म की सही आराधना है।

मूर्च्छा एक अन्धा मोह है। वह अनात्म को आत्मतत्त्व के स्तर पर ग्रहण करता है। भगवान् की भाषा में यह मिथ्यात्व का मंचन है। आत्मतत्त्व और अनात्म-तत्त्व का मिलन विजातीयों का संगम है। दोनों में विभाजन-रेखा खींचना ही भेद-विज्ञान है।

साधक आत्मदर्शन के लिए सर्वतोभावेन समर्पित होता है। अतः शारीरिक मूर्च्छा से ऊपर उठना भेद-विज्ञान की क्रियान्विति है। शरीर और आत्मा के मध्य युद्ध चल रहा है। दोनों के बीच युद्ध-विराम की स्थिति का नाम ही उपवास है। जीवन, जन्म एवं मृत्यु के बीच का एक स्वप्नमयी विस्तार है। स्वप्न-मुक्ति का आन्दोलन ही संयास है। जीवन एवं जगत् को स्वप्न मानना अनासक्ति प्राप्त करने की सफल पहल है। अनासक्ति/अमूर्च्छा साधना-जगत् की सर्वोच्च चोटी है और इसे पाने के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं की नश्वरता का हर क्षण स्मरण करना स्वयं में अध्यात्म का आयोजन है।

साधक सत्य-पथ का पथिक होता है। सत्य के साथ संघर्ष बिना अनुमति के हमसफर हो जाता है। साधक विराट् संकल्प का धनी होता है। उसे संघर्ष/परीषह से घबराना नहीं चाहिये, अपितु सहिष्णुता के बल पर उसे निष्फल और अपंग कर देना चाहिये। भगवान् ने कहा है कि परीषहों, विघ्नों को न सहना कायरता है। परीषह-पराजय संकल्प-शैथिल्य की अभिव्यक्ति है। साध्य के बीज को अंकुरित करने के लिए अनुकूलता का जल ही आवश्यक नहीं है, अपितु परीषहमूलक प्रतिकूलता की धूप भी अपरिहार्य है। दोनों के सहयोग से ही बीज का वृक्ष प्रकट होता है।

साधक सहनशील होता है, अतः वह निर्विवादतः समत्वयोगी भी होता है। भगवान् ने समत्व की गोद में ही धर्म का शैशव पाया है। साधनागत अनुकूलताएँ बनाए रखने के लिए धर्मसंघ का अनुशासन भी उपादेय है।

साधना के इन विभिन्न आयामों से गुजरना अनामय लक्ष्य को साधना है। आत्म-विजय ही परम लक्ष्य है। भगवान् ने इसे त्रैलोक्य की सर्वोच्च विजय माना है। शरीर, मन और इन्द्रियों को निगृहीत करने से ही यह विजय साकार होती है। फिर वह स्वयं ही सर्वोपरि सम्राट होता है। मुक्त हो जाता है हर सम्भावित दासता से। इस विमल स्थिति का नाम ही मोक्ष है।

मोक्ष चेतना की आखिरी ऊँचाई है। उसके बारे में किया जाने वाला कथन प्राथमिक सूचना है, शिशु की तोतली बोली में बारहखड़ी है। मोक्ष तो सबके पार है। भाषा, तर्क, कल्पना और बुद्धि के चरण वहाँ तक जा नहीं सकते। वहाँ तो है सनातन मौन, निर्वाण की निर्धूम ज्योत।

पढमो उद्देसो

१. आवंती केयावंती लोयंसि विप्परामुसंति ।

२. अट्ठाए अणट्ठाए वा, एएसु चेव विप्परामुसंति ।

३. गुरू से कामा ।

४. तओ से मारस्स अंतो ।

५. जओ से मारस्स अंतो, तओ से दूरे ।

६. णेव से अंतो, णेव से दूरे ।

७. से पासइ फुसियमिव, कुसग्गे पणुण्णं णिवइयं वाएरियं, एवं बालस्स जीवियं, मंदस्स अवियाणओ ।

८. कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे ।

९. तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

१०. मोहेण गब्भं मरणाइ एइ ।

११. एत्थ मोहे पुणो-पुणो ।

प्रथम उद्देशक

१. कुछ मनुष्य लोक में विपर्यास को प्राप्त होते हैं।

२. वे इन [जीव-निकायों] में प्रयोजनवश या निष्प्रयोजन विपर्यास को प्राप्त होते हैं।

३. उनकी कामनाएँ विस्तृत होती हैं।

४. अतः वह मृत्यु के समीप है।

५. चूंकि वह मृत्यु के समीप है, इसलिए वह [अमरत्व से] दूर है।

६. वह [निष्काम-पुरुष] न ही [मृत्यु के] समीप है, न ही [अमरत्व से] दूर है।

७. वह कुशाग्र-स्पर्शित ओसबिन्दु को वायु-निर्वातित देखता है, किन्तु मंद बाल/अज्ञानी पुरुष इसे जान नहीं पाता।

८. बाल/अज्ञानी-पुरुष क्रूर कर्म करता है।

९. मूढ़-पुरुष उससे उत्पन्न दुःख से विपर्यास करता है।

१०. मोह के कारण गर्भ/जन्म मरण प्राप्त करता है।

११. यहाँ मोह पुनः पुनः होता है।

१२. संतयं परियाणओ, संसारे परिण्णाए भवइ,
संतयं अपरियाणओ, संसारे अपरिण्णाए भवइ ।

१३. जे छेए से सागारियं ण सेवइ ।

१४. कट्टु एवं अवियाणओ, बिइया मंदस्स बालया ।

१५. लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए ।

—त्ति बेमि ।

१६. पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे, एत्थ फासे पुणो-पुणो ।

१७. आवंती केयावंती लोयंसि आरंभजीवी, एएसु चेव आरंभजीवी ।

१८. एत्थ वि बाले परिच्चमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहिं, असरणे सरणं ति मण्णमाणे ।

१९. इहमेगेसिं एगचरिया भवइ—से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाए बहुलोहे बहुरए बहुनडे बहुसडे बहुसंकप्पे, आसवसक्की पलिउच्छण्णे, उट्ठियवायं पवयमाणे मा मे केइ अदक्खू ।

२०. अण्णाण-पमाय-दोसेणं, सययं मूढे धम्मं णाभिजाणइ ।

२१. अट्टा पया माणव ! कम्मकोविया जे अणुवरया, अविज्जाए पलिमोक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्टंति ।

—त्ति बेमि ।

१२. संशय के परिज्ञान से संसार परिज्ञात होता है।
संशय के अपरिज्ञान से संसार अपरिज्ञात होता है।

१३. जो छेक/बुद्धिमान् है, वह सागार/गृहवास/सम्भोग का सेवन नहीं करता।

१४. सेवन करके भी अविज्ञायक कहना मन्दपुरुष की दोहरी मूर्खता है।

१५. प्राप्त अर्थों (मैथुन-सार) को प्रतिलेख कर, जानकर उसका अनासेवन आज्ञापित करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१६. देखो! कुछ लोग रूप में गृद्ध हैं। वे यहाँ परिणीयमान होकर स्पर्श/दुःख को प्राप्त होते हैं।

१७. कुछ लोग लोक में हिंसाजीवी हैं। वे इन (विषयों) में [आसक्तिवश] ही हिंसाजीवी हैं।

१८. यहाँ बाल-पुरुष अशरण को शरण मानता हुआ, विषयों में छटपटाता हुआ पाप-कर्मों में रमण करता है।

१९. कुछ साधु एकचारी होते हैं। वे बहुक्रोधी, बहुमानी, बहुमायावी, बहुनटी, बहुशठी, बहुसंकल्पी, आस्रव में आसक्त, कर्म में आच्छन्न, [विषयों में] उद्यमशील और प्रवृत्तमान हैं। मुझे कोई देख न ले [इस भय से छिपकर अनाचरण करते हैं।]

२०. सतत् मूढ़ पुरुष अज्ञान, प्रमाद और दोष के कारण धर्म को नहीं जानता।

२१. हे मानव! जो लोग आर्त, कर्म-कोविद, अनुपरत और अविद्या से मोक्ष होना कहते हैं, वे आवर्त/संसारचक्र में अनुपरिवर्तन करते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

बीओ उद्देसो

२२. आवंती केयावंती लोयंसि अणारंभजीवी, एएसु चेव अणारंभजीवी ।

२३. एत्थोवरए तं झोसमाणे अयं संधीति अदक्खु, जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणेत्ति अण्णेसी ।

२४. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

२५. उट्ठिए णो पमायए ।

२६. जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं ।

२७. पुढो छंदा इह माणवा, पुढो दुक्खं पवेइयं ।

२८. से अविहिंसमाणे अणवयमाणे, पुट्ठो फासे विपणुण्णए ।

२९. एस समिया-परियाए वियाहिए ।

३०. जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसंति ।

३१. इय उदाहु वीरे 'ते फासे पुट्ठो अहियासए' ।

३२. से पुव्वं पेयं पच्छापेयं ।

३३. भेउर-धम्मं, विद्धंसण-धम्मं, अधुवं, अणिइयं, असासयं, चयावचइयं, विपरिणाम-धम्मं, पासह एयं रूवसंधि ।

३४. समुप्पेहमाणस्स इक्काययण-रयस्स इह विप्पमुक्कस्स, णत्थि मग्गे विरयस्स ।

—त्ति बेमि

द्वितीय उद्देशक

२२. कुछ लोग लोक में अहिंसाजीवी हैं। वे इन [विषयों] में [अनासक्तिवश] ही अहिंसाजीवी है।

२३. जो इस विग्रहमान वर्तमान क्षण का अन्वेषी है, वह इस [संसार से] उपरत होकर उन [विषयों] को झुलसाता हुआ, 'यह संधि है' ऐसा देखे।

२४. यह मार्ग आर्य पुरुषों द्वारा प्रवेदित है।

२५. उत्थित पुरुष प्रमाद न करे।

२६. प्रत्येक प्राणी के दु:ख और सुख को जानकर [अप्रमत्त बने।]

२७. इस संसार में मनुष्य पृथक-पृथक इच्छा वाले, पृथक-पृथक दु:ख वाले प्रवेदित हैं।

२८. वह [मुनि] हिंसा न करते हुए अनर्गल न बोलते हुए, स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

२९. यह समिति-पर्याय (श्रमण-धर्म) व्याख्यात है।

३०. जो पापकर्मों में असक्त हैं वे कदाचित् आतंक/परीषह का स्पर्श करते हैं।

३१. यह महावीर ने कहा है कि वे स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

३२. वह [आतंक] पहले भी था, पश्चात् भी रहेगा।

३३. तुम इस रूपसंधि/शरीर के भंगुर-धर्म, विध्वंसन-धर्म, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, उपचय-अपचय और विपरिणाम-धर्म को देखो।

३४. [शरीर-धर्म] संप्रेक्षक, एक आयतन [आत्मा] में रत, विप्रमुक्त/अनासक्त विरत-पुरुष के लिए कोई मार्ग/उपदेश नहीं है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

३५. आवंती केयावंती लोगंसि परिग्गहावंती। से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, एएसु चेव परिग्गहावंती।

३६. एयमेव एगेसिं महब्भयं भवइ।

३७. लोगवित्तं च णं उवेहाए।

३८. एए संगे अवियाणओ से सुपडिबद्धं सूवणीयं ति णच्चा, पुरिसा परमचक्खू विपरक्कमा।

३९. एएसु चेव बंभचेरं।

—त्ति बेमि।

४०. से सुयं च मे अज्झत्थियं च मे—बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव।

४१. एत्थ विरए अणगारे, दीहरायं तितिक्खए।
पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए।

४२. एयं मोणं सम्मं अणुवासिज्जासि।

तइओ उद्देसो

४३. आवंती केयावंती लोयंसि अपरिग्गहावंती, एएसु चेव अपरिग्गहावंती।

४४. सोच्चा वई मेहावी, पंडियाणं णिसामिया।

३५. कुछ मनुष्य इस लोक में परिग्रही हैं। वे अल्प या बहुत, अणु या स्थूल, सचित्त या अचित्त [वस्तु का परिग्रहण करते हैं।] वे इनमें ही परिग्रही हैं।

३६. यह [परिग्रह] कुछ लोगों के लिए महाभयकारक होता है।

३७. लोक-वृत्त की उपेक्षा करे।

३८. इस संग/बन्धन को न जानने से ही वह सुप्रतिबद्ध और सूपनीत/आसक्त है। यह जानकर परम चक्षुष्मान् पुरुष पराक्रम करे।

३९. इन [अपरिग्रही साधकों] में ही ब्रह्मचर्य होता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

४०. मैंने सुना है, मैंने अध्ययन/अनुभव किया है — बन्ध और मोक्ष हमारी आत्मा में ही है।

४१. यहाँ विरत अनगार आजीवन तितिक्षा करे। देख! प्रमत्त बाह्य है। अप्रमत्त होकर परिव्रजन कर।

४२. इस मौन (ज्ञान) में सम्यग् वास कर।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४३. कुछ लोग इस लोक में अपरिग्रही हैं। वे इन [वस्तुओं] में ही अपरिग्रही हैं।

४४. मेधावी-पुरुष पण्डितों के वचन को सुनकर ग्रहण करे।

४५. समियाए धम्मे, आरिएहिं पवेइए ।

४६. जहेत्थ मए संधी झोसिए, एवमण्णत्थ संधी दुज्झोसिए भवइ, तम्हा बेमि—णो णिहणेज्ज वीरियं ।

४७. जे पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।
जे पुव्वुट्ठाई, पच्छा-णिवाई ।
जे णो पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।

४८. सेवि तारिसिए सिया, जे परिण्णाय लोगमण्णेसयंति ।

४९. एयं णियाय मुणिणा पवेइयं—इह आणाकंखी पंडिए अणिहे, पुव्वावररायं जयमाणे, सया सीलं संपेहाए, सुणिया भवे अकामे अझंझे ।

५०. इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ?

५१. जुद्धारिहं खलु दुल्लहं ।

५२. जहेत्थ कुसलेहिं परिण्णा-विवेगे भासिए ।

५३. चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ ।

५४. अस्सिं चेयं पव्वुच्चइ, रूवंसि वा छणंसि वा ।

५५. से हु एगे संविद्धपहे मुणी, अण्णहा लोगमुवेहमाणे ।

५६. इय कम्मं परिण्णाय, सव्वसो से ण हिंसइ । संजमई णो पगब्भइ ।

४५. आर्य पुरुषों ने समता में धर्म कहा है।

४६. जैसा यहाँ मैंने सन्धि/परिग्रह/कर्म-सन्धि को झुलसाया है, इस प्रकार अन्यत्र सन्धि को झुलसाना दुष्कर होता है। इसलिए मैं कहता हूँ, शक्ति का निगूहन/गोपन मत करो।

४७. जो/कोई पहले उठता है, पश्चात् पतित नहीं होता है। जो/कोई पहले उठता है, पश्चात् पतित होता है। जो/कोई न पहले उठता है, न पश्चात् पतित होता है।

४८. जो परित्याग करके लोक का आश्रय लेते हैं, वे वैसे ही [गृहवासी जैसे] हो जाते हैं।

४९. यह जानकर मुनि (भगवान) ने कहा — इस [अर्हत्-शासन] में आज्ञा-कांक्षी अनासक्त पण्डित-पुरुष रात्रि के प्रथम एवं अन्तिमयाम में यतनाशील बने। सदाशील की सम्प्रेक्षा करे। [तत्त्व] सुनकर अकाम और अक्रुद्ध बने।

५०. इससे (स्वयं से) ही युद्ध कर। बाह्य युद्ध से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

५१. युद्ध के योग्य होना निश्चय ही दुर्लभ है।

५२. यथार्थतः कुशल-पुरुष (भगवान) ने [युद्ध-प्रसंग] में परिज्ञा और विवेक का प्ररूपण किया है।

५३. पथ-च्युत हुए बाल/अज्ञानी-पुरुष गर्भ में ही रहते हैं।

५४. इस [अर्हत्-शासन] में कहा जाता है रूप या हिंसा में [आसक्त पुरुष पथ-च्युत हो जाता है।]

५५. वह मुनि ही पथ पर आरूढ़ है, जो लोक को अन्यथा देखता है।

५६. इस प्रकार कर्म को जानकर वह सर्वशः/सर्वथा हिंसा नहीं करता, संयम करता है, प्रगल्भता नहीं करता।

५७. उवेहमाणो पत्तेयं सायं वण्णाएसी णारभे कंचणं सव्वलोए ।

५८. एगप्पमुहे विदिसप्पइण्णे, णिव्विण्णचारी अरए पयासु ।

५९. से वसुमं सव्व-समण्णागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं ।

६०. तं णो अण्णेसिं ।

६१. जं सम्मंति पासहा, तं मोणंति पासहा ।
जं मोणंति पासहा, तं सम्मंति पासहा ।

६२. ण इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं ।

६३. मुणी मोणं समायाए, धुणे कम्म-सरीरगं ।

६४. पंतं लूहं सेवंति, वीरा समत्तदंसिणो ।

६५. एस ओहंतरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

६६. गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स दुज्जायं दुप्परक्कंतं भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो ।

५७. प्रत्येक प्राणी की शाता को देखते हुए वर्णाभिलाषी होकर सर्वलोक में किंचित भी हिंसा न करे।

५८. एक आत्मा की ओर अभिमुख रहे, विरोधी दिशाओं को पार करे, निर्विण्णचारी/विरक्त रहे, प्रजा में अरत बने।

५९. उस सम्बुद्ध-पुरुष के लिए प्रज्ञा से पाप-कर्म अकरणीय है।

६०. उसका अन्वेषण न करे।

६१. जो सम्यक्त्व देखता है, वह मौन/मुनित्व देखता है, जो मौन/मुनित्व देखता है, वह सम्यक्त्व देखता है।

६२. शिथिल, आर्द्र, गुणास्वादी/विषयासक्त, वक्रसमाचारी/मायावी, प्रमत्त, गृहवासी के लिए यह शक्य नहीं।

६३. मुनि मौन स्वीकार कर कर्म-शरीर को धुने।

६४. समत्वदर्शी वीर प्रान्त (नीरस) और लूखा/रूक्ष [भोजन] का सेवन करते हैं।

६५. इस [संसार-] प्रवाह को तरने वाला मुनि तीर्ण, मुक्त और विरत कहा कहा जाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६६. अव्यक्त/अपरिपक्व भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करने से दुर्यातना सहता है, दुष्पराक्रम करता है।

६७. वयसा वि एगे बुइया कुप्पंति माणवा ।

६८. उण्णयमाणे य णरे, महया मोहेण मुज्झइ ।

६९. संबाहा बहवे भुज्जो-भुज्जो दुरइक्कमा अजाणओ अपासओ ।

७०. एयं ते मा होउ ।

७१. एयं कुसलस्स दंसणं ।

७२. तद्दिट्ठीए तम्मोत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे ।

७३. जयंविहारी चित्तणिवाई पंथणिज्झाई पलिबाहिरे ।

७४. पासिय पाणे गच्छेज्जा, से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचेमाणे पसारेमाणे विणियट्टमाणे संपलिमज्जमाणे ।

७५. एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसंफासं समणुचिण्णा एगइया पाणा उद्दायंति ।

७६. इहलोग-वेयण-वेज्जावडियं ।

७७. जं आउट्टिकयं कम्मं, तं परिण्णाय विवेगमेइ ।

७८. एवं से अप्पमाएणं, विवेगं किट्टइ वेयवी ।

७९. से पभूयदंसी पभूयपरिण्णाणे उवसंते समिए सहिए सयाजए, दट्ठुं विप्पडिवेएइ अप्पाणं—

६७. किसी की व्यक्त वाणी से भी मनुष्य कुपित हो जाते हैं।

६८. उन्नतमान होने पर मनुष्य महान् मोह से मूढ़ हो जाता है।

६९. अज्ञान और अदर्शन के कारण पुनः-पुनः आने वाली वहुत-सी वाधाओं का अतिक्रमण करना दुष्कर है।

७०. तुम ऐसे मत वनो।

७१. यह कुशल-पुरुष (महावीर) का दर्शन है।

७२. उस (महावीर-दर्शन) में दृष्टि कर, उसे प्रमुख मान, उसका ज्ञान कर उसी में वास करे।

७३. यतना/संयमपूर्वक विहार करने वाला मुनि चित्त लगाकर पथ पर ध्यान से चले।

७४. वे आते हुए, लौटते हुए, संकुचित होते, फैलते हुए, ठहरे हुए, धूलि में लिपटते हुए प्राणियों को देखकर चले।

७५. कभी क्रिया करते हुए गुणसमित मुनि की देह का स्पर्श पाकर कुछ प्राणी उत्पीड़ित/मृत हो जाते हैं।

७६. इससे लोक में वेदन-वेद/वेदनीय कर्म का वन्ध होता है।

७७. आकुट्टिकृत/प्रवृत्तिमूलक जो कर्म हैं, उन्हें जानकर विवेक/क्षय करो।

७८. उस [कर्म] का अप्रमाद से विवेक/क्षय होता है, ऐसा वेदविद् [महावीर] ने कहा है।

७९. वह विपुलदर्शी, विपुलज्ञानी, उपशान्त, समित/सत्प्रवृत्त, [रत्नत्रय-] सहित सदाजयीमुनि [स्त्रियों को] देखकर मन में विचार करता है—

किमेस जणो करिस्सइ ? एस से परमारामो, जाओ लोगम्मि इत्थीओ ।

८०. मुणिणा हु एयं पवेइयं ।

८१. उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं अवि णिब्बलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा, अवि गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अवि आहारं वोच्छिदेज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं ।

८२. पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा ।

८३. इच्चेए कलहासंगकरा भवंति । पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए ।

—त्ति बेमि ।

८४. से णो काहिए णो पासणिए णो संपसारणिए णो ममाए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्प-संवुडे परिवज्जए सया पावं ।

८५. एयं मोणं समणुवासिज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

पंचमो उद्देसो

८६. से बेमि—तं जहा,
अवि हरए पडिपुण्णे, समंसि भोमे चिट्ठइ ।
उवसंतरए सारक्खमाणे, से चिट्ठइ सोयमज्झगए ।

यद्यपि इस लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे परम सुख देने वाली हैं, किन्तु वे [स्त्री-] जन मेरा क्या करेगी ?

८०. मुनियों के लिए यह प्ररूपित है।

८१. कभी ग्रामधर्म/वासना से उद्बाधित होने पर निर्बल भोजन भी करे, ऊनोदरि का भी करे (कम खाए), ऊर्ध्वस्थान पर भी स्थित होए, ग्रामानु-ग्राम विहार भी करे, आहार का विच्छेद भी करे, स्त्रियों में मन का त्याग भी करे।

८२. कभी पहले दंड और पीछे स्पर्श होता है, तो कभी पहले स्पर्श और पीछे दण्ड होता है।

८३. ये कलह और आसक्तिजनक होते हैं। इन [काम-भोग के परिणामों] को प्रतिलेख कर, जानकर [आचार्य] इनके अनासेवन की आज्ञा दे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

८४. वे न तो [कामभोगजन्य] कथा करे, न दृष्टि करे, न प्रसारण करे, न ममत्व करे, न क्रिया करे, वचन-गुप्ति/मौन करे, आत्म-संवरण करे, सदा पाप का परिवर्जन करे।

८५. इस मौन/ज्ञान में सम्यक् प्रकार से वास कर।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचम उद्देशक

८६. मैं कहता हूँ जैसे कि कोई ह्रद प्रतिपूर्ण है, समभूमि में स्थित है, उपशान्त, रज/पंक रहित है, सुरक्षित है और स्रोत के मध्य में स्थित है।

८७. से पास सव्वओ गुत्ते, पास लोए महेसिणो,
जे य पण्णाणमंता पबुद्धा आरंभोवरया ।

८८. सम्ममेयंति पासह ।

८९. कालस्स कंखाए परिव्वयंति ।

—त्ति बेमि ।

९०. विइगच्छ-समावण्णेणं अप्पाणेणं णो लभइ समाहिं ।

९१. सिया वेगे अणुगच्छंति, असिया वेगे अणुगच्छंति,
अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कहं ण णिव्विज्जे ?

९२. तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं ।

९३. सड्ढिस्स णं समणुण्णस्स संपव्वयमाणस्स—समियंति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ, समियंति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ, असमियंति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ, असमियंति मण्णमाणस्स एगयाअसमिया होइ ।

समियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, समिया होइ उवेहाए । असमियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, असमिया होइ उवेहाए ।

९४. उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया—उवेहाहि समियाए ।

९५. इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ ।

९६. उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह ।

९७. एत्थवि बालभावे अप्पाणं णो उवदंसेज्जा ।

८७. लोक में सर्वतः [मन, वचन और शरीर से] गुप्त महर्षियों को देख, जो प्रज्ञावान्, प्रबुद्ध और आरम्भ/हिंसा से उपरत हैं।

८८. देखो, यह सम्यक् है।

८९. वे काल/मृत्यु की आकांक्षा करते हुए परिव्रजन करते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

९०. विचिकित्सा-समापन्न/शंकाशील आत्मा समाधि प्राप्त नहीं कर सकती।

९१. कुछ पुरुष आश्रित होकर अनुगमन करते हैं, कुछ अनाश्रित होकर अनुगमन करते हैं। अनुगामियों के बीच अननुगामी को निर्वेद कैसे नहीं होगा?

९२. वही सत्य निःशंक है, जो जिनेश्वरों/तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित है।

९३. श्रद्धावान्, समनज्ञ और संप्रव्रज्यमान मुनि सम्यक् मानते हुए कभी सम्यक् होता है, सम्यक् मानते हुए कभी असम्यक् होता है, असम्यक् मानते हुए कभी सम्यक् होता है, असम्यक् मानते हुए कभी असम्यक् होता है। सम्यक् मानते हुए सम्यक् हो या असम्यक्, उत्प्रेक्षा से सम्यक् हो जाता है। असम्यक् मानते हुए सम्यक् हो या असम्यक् उत्प्रेक्षा से असम्यक् हो जाता है।

९४. उत्प्रेक्षमान (द्रष्टा/उदासीन) पुरुष अनुत्प्रेक्षमान पुरुष से कहे—सम्यक् (सत्य) की उत्प्रेक्षा/विचारणा करो।

९५. इस प्रकार [सम्यक्-असम्यक्/कर्म की] सन्धि/ग्रन्थि नष्ट होती है।

९६. उत्थित और स्थित पुरुष की गति को देखो।

९७. इस/हिंसामूलक बालभाव में स्वयं को उपदर्शित,स्थापित मत करो।

९८. तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वंति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वंति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं परिघेतव्वंति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वंति मण्णसि ।

९९. अंजू चेय-पडिबुद्ध-जीवी; तम्हा ण हंता ण विघायए ।

१००. अणुसंवेयणमप्पाणेणं, जं हंतव्वं णाभिपत्थए ।

१०१. जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया ।

१०२. जेण विजाणइ से आया ।

१०३. तं पडुच्च पडिसंखाए ।

१०४. एस आयावाई समियाए-परियाए वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

छट्ठो उद्देसो

१०५. अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे निरुवट्ठाणा । एयं ते मा होउ । एयं कुसलस्स दंसणं ।

१०६. तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे ।

९८. वह तू ही है, जिसे तू हंतव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू आज्ञापयितव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू परितापयितव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू परिग्रहीतव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू अपद्रावयितव्य (मारने योग्य) मानता है।

९९. [मुनि] ऋजु और प्रतिबुद्धजीवी होता है, इसलिए न हनन करता है, न विघात।

१००. स्वयं के द्वारा अनुसंवेदित होने के कारण हनन की प्रार्थना/इच्छा न करे।

१०१. जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है वह आत्मा है।

१०२. जिसके द्वारा जाना जाता है, वह आत्मा है।

१०३. इसकी प्रतीति से परिसंख्यान/सही अनुमान होता है।

१०४. यह आत्मवादी सम्यक् पारगामी कहलाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

षष्ठ उद्देशक

१०५. कुछ पुरुष अनाज्ञा में उपस्थित होते हैं, कुछ व्यक्ति आज्ञा में निरुपस्थित होते हैं। यह स्थिति तुम्हारी न हो। यह कुशल पुरुष [महावीर] का दर्शन है।

१०६. उसमें दृष्टि करे, उसमें तन्मय बने उसे प्रमुख बनाये, उसकी, स्मृति करे, उसमें वास करे।

१०७. अभिभूय अदक्खू, अणभिभूए पभू निरालंवणयाए ।

१०८. जे महं अवहिमणे ।

१०९. पवाएणं पवायं जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा ।

११०. णिद्देसं णाइवट्टेज्जा मेहावी, सुपडिलेहिया सव्वओ सव्वप्पणा सम्मं समभिण्णाय ।

१११. इहआरामो परिण्णाय, अल्लीण-गुत्तो परिव्वए ।

११२. णिट्ठियट्ठी वीरे, आगमेण सदा परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

११३. उड्ढं सोया अहे सोया, तिरियं सोया वियाहिया ।
एए सोया विअक्खाया, जेहिं संगइ पासहा ।।

११४. आवट्टं तु पेहाए, एत्थ विरमेज्ज वेयवी ।

११५. विणएत्तु सोयं णिक्खम्म, एस महं अकम्मा जाणइ, पासइ ।

११६. पडिलेहाए णावकंखइ, इह आगइं गइं परिण्णाय ।

११७. अच्चेइ जाइ-मरणस्स वट्टमग्गं वक्खाय-रए ।

११८. सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जइ, मई तत्थ ण गाहिया ।

१०७. अभिभूत ही अद्राक्षी/ज्ञाता है। अनभिभूत ही निरालम्ब होने में समर्थ है।

१०८. जो महान् है, वही अवहिर्मन है।

१०९. पूर्व-जन्म की स्मृति से, सर्वज्ञ के वचनों से अथवा अन्य किसी ज्ञानी के पास सुनकर प्रवाद (ज्ञान) से प्रवाद (ज्ञान) को जानना चाहिये।

११०. मेधावी सुप्रतिलेख/विचार कर सभी ओर से, सभी प्रकार से भली-भाँति जानकर निर्देश का अतिवर्तन न करे।

१११. इस परिज्ञात आराम (आत्म-ज्ञान) में अलीन-गुप्त/जितेन्द्रिय होकर परिव्रजन करे।

११२. नियाग-अर्थी/मोक्षार्थी वीर-पुरुष आगम के अनुसार पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

११३. ऊर्ध्व-स्रोत, अधो-स्रोत, तिर्यक-स्रोत प्रतिपादित है। ये स्रोत आख्यात हैं, जिनके द्वारा संगति/आसक्ति को देखो।

११४. वेदज्ञ/ज्ञाता-पुरुष आवर्त की प्रेक्षा करके विरत रहे।

११५. निष्क्रमित/ प्रव्रजित मुनि [कर्म/संसार-] स्रोत को रोके। ऐसा महान-पुरुष ही अकर्म को जानता है, देखता है।

११६. [मुनि] इस परिज्ञात गति-आगति का प्रतिलेख कर आकांक्षा नहीं करता।

११७. व्याख्यातरत/ज्ञानरत पुरुष जाति-मरण के वृत्त-मार्ग/चक्रमार्ग को पार कर लेता है।

११८. जहाँ सभी स्वर निवर्तित हैं, तर्क विद्यमान नहीं हैं, वहाँ बुद्धि का प्रवेश नहीं हो पाता है।

११९. ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयण्णे ।

१२०. से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, परिमंडले ।

१२१. ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुक्किल्ले ।

१२२. ण सुरभिगंधे, ण दुरभिगधे ।

१२३. ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे ।

१२४. ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे ण लुक्खे ।

१२५. ण काऊ, ण रुहे, ण संगे ।

१२६. ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अण्णहा ।

१२७. परिण्णे सण्णे ।

१२८. उवमा ण विज्जए अरूवी सत्ता ।

१२९. अपयस्स पयं णत्थि ।

१३०. से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे । इच्चेव ।

—त्ति बेमि ।

११९. अप्रतिष्ठान खेदज्ञ (लोकज्ञाता) के लिए ओज (ज्ञान-प्रकाश) है।

१२०. वह [ज्ञान-प्रकाश आत्मा] न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्र्यस्र/त्रिकोण है, न चतुरस्र/चतुष्कोण है, न परिमण्डल/गोलाकार है।

१२१. [वह] न कृष्ण है, न नील है, न लोहित है, न पीत है, न शुक्ल है।

१२२. [वह] न सुगन्धित है, दुर्गन्धित।

१२३. [वह] न तिक्त है, न कटुक है, न कषाय/कसैला है, न अम्ल है, न मधुर है।

१२४. [वह] न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है, न लूखा/रूक्ष है।

१२५. [वह] न काय है, न रुह/पुनर्जन्मा है, न संग है।

१२६. [वह] न स्त्री है, न पुरुष है, न अन्य/नपुंसक है।

१२७. वह परिज्ञ है, संज्ञ है।

१२८. [वह] उपमा-रहित अरूपी सत्ता है।

१२९. उस अपदस्थ का पद नहीं है।

१३०. वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है। इतना ही।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

छट्ठं अज्झयणं

धुयं

षष्ठ अध्ययन

धुत

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'धुत/धूत' है। यह अध्याय कर्म-क्षरण का अभियान है। जीवन की उत्पत्ति से लेकर महामुनित्व की प्रतिष्ठा का सारा वृत्तान्त इसमें आकलित है। चेतना की जागरूकता ही आरोग्य-लाभ है। कार्मिक परिवेश के साथ चेतना की साझेदारी मैत्री विपर्यास है। आत्मा एकाकी है, अतः और तो क्या कर्म भी इसके लिए पड़ोसी है, घरेलू नहीं। परकीय पदार्थों से स्वयं को अतिरिक्त देखने का नाम ही भेद-विज्ञान है।

कर्मों की खेती कषाय और विषय-वासना के बदौलत होती है। राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म जन्म-मरण का हलधर है। जन्म-मरण से ही दुःख की तिक्त तुम्बी फलती है। और, दुःख संसार की वास्तविकता है। मुनि-जीवन वीतरागता का अनुष्ठान है। इसलिए यह संसार से दूरी है।

मनुष्य का मन सदा संसरणशील रहता है। अतः मन की मृत्यु का नाम ही मुनित्व की पहचान है। मन प्रचण्ड ऊर्जा का स्वामी है। यदि इसके व्यक्तित्व का सम्यग्बोध कर इसे सृजनात्मक कार्यों में लगा दिया जाए, तो वह आत्मदर्शन/परमात्म-साक्षात्कार में अनन्य सहायक हो सकता है।

जीवन में मुनित्व एवं गार्हस्थ्य दोनों का अंकुरण सम्भव है। मन की कसौटी पर गृहस्थ भी मुनि हो सकता है और मुनि भी गृहस्थ। तन-मन की सत्ता पर आत्म-आधिपत्य प्राप्त करना स्वराज्य की उपलब्धि है। कर्म-शत्रुओं को फेंफेड़ने के लिए अहर्निश सन्नद्ध रहना आत्मशास्ता का दायित्व है।

सत्य की मुखरता आत्मा की पवित्रता से है। मन के मौन हो जाने पर ही निःशब्द सत्य, निर्विकल्प समाधि झंकृत होती है। अतः बाह्याभ्यन्तर की स्वच्छता वास्तव में कैवल्य का आलिंगन है। स्वयं को जगाकर महामुनित्व का महोत्सव आयोजित करना स्वयं में सिद्धत्व की प्राण-प्रतिष्ठा है।

इस प्रस्तावित स्थिति में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है कि साधक को सदा उसे खोजना चाहिये, जो संसार-सरिता के सतत बहाव के बीच में भी स्थिर है। संसार तो नदी-नाव का संयोग है। अतः निस्संग-साधक के लिए संग उसी का उपादेय है, जिसे मृत्यु न चूम सके। संसार से महाभिनिष्क्रमण/महातिक्रमण करने वाला सिद्धों की ज्योति विकसित कर सकता है।

अभिनिष्क्रमण वैराग्य की अभिव्यक्ति है। वैराग्य राग का विलोम नहीं, अपितु राग से मुक्ति है। वैराग्य-पथ पर कदम वर्धमान होने के बाद संसार का आकर्षण दमित राग का प्रकटन है। यदि संसार के राग-पाषाणों पर वैराग्य की सतत जल धार गिरती रहे तो कठोर से कठोर चट्टान को भी चकनाचूर किया जा सकता है।

वान्त संसार साधक का अतीत है और अतीत का स्मरण मन का उपद्रव है। अपने अस्तित्व में निवास करना ही आस्तिकता है। साधक ज्यों-ज्यों सूर्य बन तपेगा, त्यों-त्यों मुक्ति की पंखुरियों के द्वार उद्घाटित होते चले जाएँगे।

साधक का जीवन संघर्ष, अहिंसा एवं सत्यविजय की एक अभिनव यात्रा है। वह शत्रुंजयी एवं मृत्युंजयी है। सिद्धाचल के शिखरों पर आरोहण करते समय चूकने/फिसलने का खतरा सदा साथ रहता है। पथ-च्युति चुनौती है, किन्तु प्रत्येक फिसलन एक शिक्षण है। अप्रमत्तता तथा जागरूकता पथ की चौकसी है। प्रज्ञा-संप्रेक्षक और आत्म-जागृत पुरुष हर फिसलन के पार है। संयम-यात्रा को कष्टपूर्ण जानकर पथ-तट पर बैठ जाना संकल्प-शैथिल्य है। जागरूकतापूर्वक साधना-मार्ग पर बढ़ते रहना तपश्चर्या है। साधक के लिए सिद्धि ही सर्वोपरि कृत्य है। जीवन-ऊर्जा को समग्रता के साथ साधना में एकाग्र करने वाले के लिए कदम-कदम पर मंज़िल है।

पढमो उद्देसो

१. ओबुज्झमाणे इह माणवेसु, आघाइ से णरे।

२. जस्स इमाओ जाइओ सव्वओ सुपडिलेहियाओ भवंति, अक्खाइ से णाणमणेलिसं।

३. से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं णिक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पण्णाणमंताणं इह मुत्तिमग्गं।

४. एवं एगे महावीरा विप्परक्कमंति।

५. पासह एगे अवसीयमाणे अणत्तपण्णे।

६. से बेमि—से जहा वि कुंमे हरए विणिविट्ठचित्ते, पच्छन्न-पलासे, उम्मग्गं से णो लहइ।

७. भंजगा इव सन्निवेसं णो चयंति।

८. एवं एगे—अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, णियाणओ ते ण लभंति मोक्खं।

९. अह पास तेहिं-तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया।

१०. गंडी अहवा कोढी, रायंसी अवमारियं।
काणियं झिमियं चेव, कुणियं खुज्जियं तहा॥

प्रथम उद्देशक

१. इस संसार में वही नर है, जो मनुष्योंके वीच वोधिपूर्वक आख्यान करता है।

२. जिसे वे जातियाँ सभी प्रकार से सुप्रतेलेखित हैं, वह अनुपम ज्ञान का आख्यान करता है !

३. समुपस्थित, निक्षिप्तदण्ड, समाधियुक्त, प्रज्ञावन्त पुरुष के लिए ही इस संसार में मुक्ति-मार्ग प्रकीर्तित है।

४. इस प्रकार कुछ महावीर-पुरुष विशेष पराक्रम करते हैं।

५. अवसाद करते हुए कुछ अनात्मप्रज्ञ पुरुष को देखो।

६. वही कहता हूँ — जैसे कि पलाश से प्रच्छन्न ह्रद में कोई विनिविष्ट/एकाग्रचित्त कछुआ उन्मार्ग को प्राप्त नहीं करता है।

७. कुछ पुरुष वृक्ष के समान नियत स्थान को नहीं छोड़ते।

८- इस प्रकार कुछ पुरुष अनेक प्रकार के कुलों में उत्पन्न होते हैं, रूपों/विषयों में आसक्त होते हैं, करुण स्तनित/विलाप करते हैं, निदान के कारण वे मोक्ष को प्राप्त नहीं करते।

९. अरे देख ! उन-उन कुलों/रूपों में तू बार-बार उत्पन्न हुआ है।

१०. गण्डी—कण्ठरोगी, कोढ़ी, राजंसी/राजरो—दमा, अपस्मार—मृगी, काणा, सून्नता—लकवा, कूणित्व—हस्त-पंगुता, कुब्जता—कुवड़ापन,

उदरिं च पास मूयं च, सूणिअं च गिलासिणिं ।
वेवइं पीढसप्पिं च, सिलिवयं महुमेहणिं ॥
सोलस एए रोगा, अक्खाया अणुपुव्वसो ।
अह णं फुसंति आयंका, फासा य असमंजसा. ॥
मरणं तेसिं संपेहाए, उववायं चयणं च णच्चा ।
परिपागं च संपेहाए, तं सुणेह जहा-तहा ॥

११. संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिया ।

१२. तामेव सइं असइं अइअच्च उच्चावयफासे पडिसंवेएइ ।

१३. बुद्धेहिं एयं पवेइयं ।

१४. संति पाणा वासगा, रसगा, उदए उदयचरा, आगासगामिणो ।

१५. पाणा पाणे किलेसंति ।

१६. पास लोए महब्भयं ।

१७. बहुदुक्खा हु जंतवो ।

१८. सत्ता कामेसु माणवा ।

१९. अबलेण वहं गच्छंति, सरीरेण पभंगुरेण ।

२०. अट्टे से बहुदुक्खे, इइ बाले कुव्वइ ।

२१. एए रोगे बहू णच्चा, आउरा परियावए, णालं पास, अलं तवेएहिं ।

२२. एयं पास मुणी ! महब्भयं ।

उदरी-रोग—शूल-रोग, मूकता—गूँगापन, सूजन, भस्मकरोग, कम्पनत्व, पीठसर्पी—पीठ का झुकाव, श्लीपद—हाथीपगा और मधुमेह। ये सोलह रोग अनुपूर्व से आख्यात हैं। इसके अतिरिक्त आतंक, स्पर्श और असमंजसता का स्पर्श करते हैं। उनके मरण की सम्प्रेक्षा कर उपपात और च्यवन को जानकर तथा परिपाक/कर्मफल को देखकर उसे यथार्थ रूप में सुने।

११. प्राणी अन्धकार में होने से अन्धे कहे गये हैं।

१२. वहाँ पर एक वार या अनेक वार जाकर उच्च आताप-स्पर्श का प्रतिसंवेदन करता है।

१३. यह बुद्ध-पुरुषों द्वारा प्रवेदित है।

१४. प्राणी वर्षज, रसज, उदक/जलज, उदकचर आकाशगामी हैं।

१५. प्राणी प्राणियों को क्लेश/कष्ट देते हैं।

१६. लोक के महाभय को देख।

१७. जन्तु बहुदुःखी हैं।

१८. मनुष्य काम में आसक्त हैं।

१९. अबल भंगुर शरीर के लिए वध करते हैं।

२०. जो आर्त है, वह वाल/अज्ञानी बहुत दुःख करता है।

२१. रोग बहुत है, ऐसा जानकर आतुर मनुष्य परिताप देते हैं। देखो! समर्थ ही नहीं है। इनसे तुम्हारे लिए कोई प्रयोजन है।

२२. मुने! इस महाभय को देख।

२३. णाइवाएज्ज कंचणं ।

२४. आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धूयवायं पवेयइस्सामि ।

२५. इह खलु अत्तत्ताए तेहिं-तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसेएण अभिसंभूया, अभिसंजाया, अभिणिव्वुडा, अभिसंवुड्ढा, अभिसंबुद्धा, अभिणिक्खंता, अणुपुव्वेण महामुणी ।

२६. तं परक्कमंतं परिदेवमाणा, मा णे चयाहि इय ते वयंति ।
छंदोवणीया अज्झोववण्ण, अक्कंदकारी जणगा रुवंति ।।

२७. अतारिसे मुणी, णो ओहं तरए, जणगा जेण विप्पजढा ।

२८. सरणं तत्थ णो समेति, कहं णु णाम से तत्थ रमइ ?

२९. एयं णाणं सया समणुवासिज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

३०. आउरं लोयमायाए, चइत्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि वसु वा अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं अहा-तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला ।

३१. वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं विउसिज्जा ।

२३. किंचित् भी अतिपात न करे।

२४. हे शिष्य ! समझो, सुनो। मैं धुतवाद प्रवेदित करूँगा।

२५. इस संसार में आत्मभाव से उन-उन कुलों में अभिसिंचन करने से अभिसंभूत हुए, अभिसंजात हुए, अभिनिविष्ट हुए, अभिसंवृद्ध हुए, अभिसम्बुद्ध हुए, अभिनिष्क्रान्त हुए और अनुपूर्वक महामुनि हुए।

२६. उस पराक्रमी पुरुष को विलाप करते हुए जनक कहते हैं कि तू हमें मत छोड़। वे छन्दोपनीक/सम्मानकर्ता, अभ्युपपन्न/प्रेमासक्त आक्रन्दकारी जनक रोते हैं।

२७. [जनक कहते हैं—] वह न तो मुनि है, न ओघ/प्रवाह को पार कर सकता है, जो जनक को छोड़ देता है।

२८. मुनि उस [संसार] की शरण में नहीं जाता। फिर वह कैसे संसार में रमण कर सकता है ?

२९. इस ज्ञान में सदा वास कर।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

३०. आतुर लोक को जानकर, पूर्व संयोग को त्याग कर, उपशम को धारण कर, ब्रह्मचर्य में वास कर, यथातथ्य धर्म को पूर्ण या अपूर्ण रूप में जानकर भी कुशील-पुरुष [चारित्र-धर्म का] पालन नहीं कर पाते।

३१. वे वस्त्र, प्रतिग्रह/उपकरण, कम्बल, पाद-प्रोंछन का विसर्जन कर बैठते हैं।

३२. अणुपुव्वेण अणहियासेमाणा परीसहे दुरहियासए ।

३३. कामे ममायमाणस्स इयाणिं वा मुहुत्ते वा अपरिमाणाए भेए ।

३४. एवं से अंतराएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवितिण्णा चेए ।

३५. अहेगे धम्ममायाय आयाणप्पभिइं सुपणिहिए चरे, अप्पलीयमाणे दढे ।

३६. सव्वं गिद्धिं परिण्णाय, एस पणए महामुणी ।

३७. अइअच्च सव्वओ संगं 'ण महं अत्थित्ति इय एगोहं ।'

३८. अस्सि जयमाणे एत्थ विरए अणगारे सव्वओ मुंडे रीयंते ।

३९. जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए. से अक्कुट्ठे व हए व लूंचिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सद्द-फासेहिं, इय संखाए, एगयरे अण्णयरे अभिण्णाय, तितिक्खमाणे परिव्वए ।

४०. जे य हिरी. जे य अहिरीमाणा ।

४१. चिच्चा सव्वं विसोत्तियं, फासे-फासे समियदंसणे ।

४२. एए भो ! णगिणा वुत्ता, जे लोगंसि अणागमणधम्मिणो ।

४३. आणाए मामगं धम्मं ।

३२, क्रमशः दुःसह परीषहों को सहन न करते हुए [वे चारित्र छोड़ देते हैं ।]

३३. काम में ममत्ववान होते हुए इसी क्षण या मूहूर्त भर में अथवा अपरिमित समय में भेद/मृत्यु प्राप्त कर लेते हैं ।

३४. इस प्रकार वे अन्तराय, काम/विषय और अपूर्णता के कारण पार नहीं होते ।

३५. कुछ लोग धर्म को ग्रहण करके जीवन-पर्यन्त सुनिगृहीत और दृढ़ अप्रलीन/अनासक्त होकर विचरण करते हैं ।

३६. यह महामुनि सर्व गृद्धता को छोड़कर प्रणत है ।

३७. सभी प्रकार से संग का त्यागकर सोचे—मेरा कोई नहीं है, मैं अकेला हूँ ।

३८. इस (धर्म) में यत्नशील, विरत, अनगार सर्व प्रकार से मुण्ड होकर विचरण करता है ।

३९. जो अचेलक, पर्यूषित/संयमित और अवमौदर्यपूर्वक संप्रतिष्ठित है, वह अतथ्य/अनर्गल शब्द-स्पर्शों से आक्रुष्ट, हत, लुंचित, पलित अथवा अकथ्य/निन्द्य होने पर विचार कर अनुकूल और प्रतिकूल को जानकर तितिक्षापूर्वक परिव्रजन करे ।

४०. जो हितकर है या अहितकर है [उस पर विचार करे ।]

४१. सर्व विस्रोतों को छोड़कर सम्यग्दर्शनपूर्वक स्पर्श,जाल को स्पर्शित करे-काटे ।

४२. हे शिष्य ! जो लोक में अनागमधर्मी (पुनरागमनरहित) हैं, वे नग्न/निर्ग्रन्थ कहे गये हैं ।

४३. मेरा धर्म आज्ञा में है ।

४४. एस उत्तरवादे इह माणवाणं वियाहिए ।

४५. एत्थोवरए तं झोसमाणे आयाणिज्जं परिण्णाय, परियाएण विगिंचइ ।

४६. इह एगेसिं एगचरिया होइ ।

४७. तत्थियरा इयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए ।

४८. सुब्भि अदुवा दुब्भिं अदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसंति ।

४९. ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

५०. एयं खु मुणी आयाणं सया सुअक्खायधम्मे विहूयकप्पे णिज्झोसइत्ता जे अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स णो एवं भवइ—परिजुण्णे मे वत्थे वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि, सूइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि, वोक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ।

५१. अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति ।

५२. एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ अचेले लाघवं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

४४, यह उत्तरवाद/श्रेष्ठ कथन मनुष्यों के लिए व्याख्यायित हैं।

४५. इसमें लीन पुरुप उस कर्म-बन्ध को नष्ट करता हुआ परिज्ञात आदानीय/ग्राह्य पर्याय से उसका त्याग करता है।

४६. इनमें से किसी की एकचर्या होती है।

४७. इससे इतर मुनि इतर कुलों से शुद्धैषणा और सर्वेषणा के द्वारा परिव्रजन करते हैं, वे मेधावी हैं।

४८. सुरभित या दुरभित अथवा भैरव प्राणी प्राणों को क्लेश देते हैं।

४९. वे धीर-पुरुष [मुनि] उन स्पर्शो से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

५०. सम्यक् प्रकार से आख्यात धर्म-रत विधूत-कल्पी मुनि इस आदान (उपकरण) को त्याग करके जो अचेलक रहता है, उस भिक्षु के लिए ऐसा नहीं होता हैं— मेरा वस्त्र परिजीर्ण हैं, इसलिए वस्त्र की याचना करूँगा, सूत्र/धागे की याचना करूँगा, सूई की याचना करूँगा, साँधूगा, सीऊंगा, वढ़ाऊँगा, छोटा वनाऊँगा, पहनूंगा, ओढूंगा।

५१. अथवा उसमें पराक्रम करते हुए अचेलक तृण-स्पर्श स्पर्श/पीड़ित करते हैं, शीत-स्पर्श स्पर्श करते हैं, तेज-स्पर्श स्पर्श करते हैं, दंशमशक-स्पर्श स्पर्श करते हैं।

५२. अचेलक लघुता को प्राप्त करता हुआ एक रूप, अनेक रूपएवं विविध रूपों के स्पर्शों को सहन करता है। वह तप से अभिसमन्वित होता है।

५३. जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिज्जा।

५४. एवं तेसिं महावीराणं चिररायं पुव्वाइं वासाणि रीयमाणाणं दवियाणं पास अहियासियं।

५५. आगयपण्णाणाणं किसा वाहवो भवंति पयणुए य मंससोणिए।

५६. विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए एस तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए।

—त्ति बेमि।

५७. विरयं भिक्खुं रीयंतं, चिरराओसियं, अरई तत्थ किं विधारए?

५८. संधेमाणे समुट्ठिए।

५९. जहा से दीवे असंदीणे, एवं से धम्मे आरिय-पएसिए।

६०. ते अणवकंखमाणा पाणे अणइवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया।

६१. एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिया-पोए, एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइय।

—त्ति बेमि

५३. जैसा भगवत्-प्रवेदित है, उसे जानकर सभी प्रकार से, सभी रूप से सम्यक्त्व/समत्व को ही समझे।

५४. इस प्रकार पूर्व वर्षों में चिर काल तक विचरण करने वाले उन संयमित महावीरों की सहनशीलता देख।

५५. प्रज्ञापन्न की बाहुएँ कृश होती हैं और मांस-रक्त प्रतनिक/अल्प होता है।

५६. परिज्ञात विश्रेणी (राग-द्वेषादि बन्धन) को काटकर यह मुनि तीर्ण, मुक्त एवं विरत कहलाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

५७. चिरकाल से संयम में विचरण करने वाले विरत भिक्षु को क्या अरति विचलित कर पायेगी?

५८. संधिमान/अध्यवसायी समुपस्थित/जागृत है।

५९. जैसे द्वीप असंदीन/अनावृत है, इसी प्रकार वह आर्य-प्रवेदित धर्म है।

६०. वे अनाकांक्षी एवं अनतिपाती/अहिंसक मुनि प्राणियों के प्रति दयाशील, मेधावी और पंडित हैं।

६१. इस प्रकार वे शिष्य भगवान् के अनुष्ठान में दिन-रात क्रमशः तल्लीन हैं, जिस प्रकार द्विज-पोत/विहग-शिशु।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चउत्थो उद्देसो

६२. एवं ते सिस्सा दिया य राओ य, अणुपुव्वेण वाइया तेहिं महावीरेहिं पण्णा-णमंतेहिं तेसिंतिए पण्णाणमुवलब्भ हिच्चा उवसमं फारुसियं समाइयंति ।

६३. वसित्ता बंभचेरंसि आणं तं णो त्ति मण्णमाणा ।

६४. अग्घायं तु सोच्चा णिसम्म समणुण्णा जीविस्सामो एगे णिक्खम्मंते ।

६५. असंभवंता विडज्झमाणा, कामेहिं गिद्धा अज्झोववण्णा ।
समाहिमाघायमजोसयंता, सत्थारमेव फरुसं वदंति ॥

६६. सीलमंता उवसंता, संखाए रीयमाणा, असीला अणुवयमाणा बिइया मंदस्स बालया ।

६७. णियट्टमाणा एगे आयार-गोयरमाइक्खंति ।

६८. णाणभट्ठा दंसणलूसिणो णममाणा एगे जीवियं विप्परिणामेंति ।

६९. पुट्ठा वेगे णियट्टंति, जीवियस्सेव कारणा ।

७०. णिक्खंतं पि तेसिं दुण्णिक्खंतं भवइ ।

७१. बाल-वयणिज्जा हु ते णरा, पुणो-पुणो जाइं पकप्पेंति ।

७२. अहे संभवंता विद्दायमाणा, अहमंसी विउक्कसे ।

चतुर्थ उद्देशक

६२. इस प्रकार उन प्रज्ञापन्न महावीरों के द्वारा रात-दिन क्रमशः शिक्षित हुए कितने ही शिष्य उनके पास प्रज्ञान/विज्ञान को प्राप्त करके भी उपशम को छोड़कर परुषता का समादर करते हैं।

६३. ब्रह्मचर्य में वास करके भी उनकी आज्ञा को नहीं मानते।

६४. आख्यात को सुनकर, समझकर, समादर कर जीवन-यापन करेंगे, ऐसा सोचकर कुछ निष्क्रमण करते हैं।

६५. काम में विदग्ध और आसक्ति-उपपन्न लोग निष्क्रमण-मार्ग पर असंभवित होते हैं, आख्यात समाधि को प्राप्त न करते हुए शास्ता को ही कठोर कहते हैं।

६६. वे शीलवान् उपशान्त और बोधिपूर्वक विचरण करने वाले मुनियों को अशील कहते हैं। अज्ञानी की यह दोहरी मूर्खता है।

६७. कुछ निवर्तमान मुनि आचार-गोचर (शुद्धाचरण) का कथन करते है।

६८. कुछ मुनि नत होते हुए भी ज्ञान-भ्रष्ट और दर्शन-भ्रष्ट होने के कारण जीवन का विपरिणमन करते हैं।

६९. जीवन के कारण से स्पृष्ट होने पर कुछ लोग निर्वतित होते हैं।

७०. निष्क्रान्त होते हुए भी वे दुर्निष्क्रान्त हैं।

७१. वे मनुष्य बाल-वचनीय हैं। वे बार-बार जाति/जन्म को प्रकल्पित/प्राप्त करते हैं।

७२. निम्न होते हुए भी स्वयं को विद्वान मानने वाले अपने अहं को प्रदर्शित करते हैं।

७३. उदासीणे फरसं वयंति।

७४. पलियं पकथे अदुवा पकथे अतहेहिं।

७५. तं मेहावी जाणिज्जा धम्मं।

७६. अहम्मट्ठी तुमंसि णाम बाले, आरंभट्ठी, अणुवयमाणे, हणमाणे, घायमाणे, हणओ यावि समणुजाण माणे।

७७. घोरे धम्मे।

७८. उदीरिए, उवेहइ णं अणाणाए, एस विसण्णे वियद्दे वियाहिए।

—त्ति बेमि।

७९. 'किमणेण भो! जणेण करिस्सामि' त्ति मण्णमाणे एवं एगे वइत्ता,
मायरं पियरं हिच्चा, णायओ य परिग्गहं।
वीरायमाणा समुट्ठाए, अविहिंसा सुव्वया दंता॥

८०. पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे।

८१. वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवंति।

८२. अहमेगेसि सिलोए पावए भवइ।

८३. से समणो विब्भंते, विब्भंते पासह।

८४. एगे समण्णागएहिं असमण्णागए, णममाणेहिं अणममाणे, विरएहिं अविरए, दविएहिं अदविए।

८५. अभिसमेच्चा पंडिए मेहावी णिट्ठियट्ठे वीरे आगमेणं सया परक्कमेज्जासि।

—त्ति बेमि।

७३. उदासीन-साधक को परुष वचन बोलते हैं।

७४. पलित/कृत कार्य का कथन करते हैं अथवा अतथ्य का कथन करते हैं।

७५. मेधावी उस धर्म को जाने।

७६. तू अधर्मार्थी है, बाल है, आरम्भार्थी है, अनुमोदक है, हिंसक है, घातक है, हनन करने वाले का समर्थक है।

७७. धर्म दुष्कर है।

७८. जो प्रतिपादित धर्म की अनाज्ञा से उपेक्षा करता है। वह विपण्ण और वितर्क व्याख्यात है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

७९, 'अरे! इस स्वजन का मैं क्या करूँगा—इस प्रकार मानते और कहते हुए कुछ लोग माता, पिता, ज्ञातिजन और परिग्रह को छोड़कर वीरतापूर्वक समुपस्थित होते हैं, अहिंसक, सुव्रती और दान्त होते है।

८०. दीन, उत्पतित और पतित लोगों को देख।

८१. विषय-वशवर्ती कायर-जन लूसक/विध्वंसक हैं।

८२. इनमें से कुछ श्लाघ्य और पातक हैं।

८३. उस विभ्रान्त और विभ्रष्ट श्रमण को देखो।

८४. कुछ मुनि समन्वागत या असमन्वागत, नम्रीभूत या अनम्रीभूत, विरत या अविरत, द्रवित या अद्रवित हैं।

८५. यह जानकर पण्डित, मेधावी, निश्चयार्थी वीर-पुरुष सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचमो उद्देसो

८६. से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा, गामेसु वा गामंतरेसु वा, नगरेसु वा नगरंतरेसु वा, जणवएसु वा जणवयंतरेसु वा, गामनयरंतरे वा गामजणवयंतरे वा, नगरजणवयंतरे वा, संतेगइया जणा लूसगा भवंति, अदुवा फासा फुसंति ।

८७. ते फासे, पुट्ठो वीरोहियासए ।

८८. ओए समियदंसणे ।

८९. दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं, आइक्खे विभए किट्टे वेयवी ।

९०. से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेयए—संति, विरइं उवसमं, णिव्वाणं, सोयवियं, अज्जवियं, मद्दवियं, लाघवियं, अणइवत्तियं ।

९१. सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ।

९२. अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे—णो अत्ताणं आसाएज्जा, णो परं आसाएज्जा, णो अण्णाइं पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं आसाएज्जा ।

९३. से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं, जहा से दीवे असंदीणे, एवं से भवइ सरणं महामुणी ।

९४. एवं से उट्ठिए ठियप्पा, अणिहे अचले चले, अवहिल्लेसे परिव्वए ।

पंचम उद्देशक

८६. वह [मुनि] गृहों में या गृहान्तरों (गृह के समीप) में ग्रामों में या ग्रामान्तरों में, नगरों में या नगरांन्तरों में, जनपदों में या जनपदान्तरों में, ग्राम-नगरान्तरों (गाँव-नगर के बीच) में या ग्राम-जनपदान्तरों में या नगर-जनपदान्तरों में रहते हैं, तब कुछ लोग त्रास पहुँचाते हैं अथवा वे स्पर्शो को स्पर्श करते हैं।

८७. उन स्पर्शो से स्पृष्ट होने पर वीर-पुरुष अध्यास/सहन करे।

८८. साधक का ओज सम्यग् दर्शन हैं।

८९. वेद/लोक की दया जानकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर दिशा में आख्यान करे, कीर्तित करे।

९०. वह सुश्रुषा के लिए उपस्थित या अनुपस्थित होने पर शान्ति, विरति/उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव लाघव का अनुशासन कहे।

९१. भिक्षु सब प्राणियों, सब भूतों, सब सत्वों और सब जीवों को धर्म का उपदेश दे।

९२. विवेकी भिक्षु धर्म का आख्यान करता हुआ न तो अपनी आशातना करे, न दूसरे की आशातना करे और न ही अन्य प्राणियों, भूतों, जीवों एवं सत्वों की आशातना करे।

९३. वह आशातना-रहित/जागृत होता हुआ आशातना न करे। वध्यमान प्राणियों, भूतों, जीवों एवं सत्वों के लिए जैसे असंदीन दीप है, इसी प्रकार वह महामुनि शरणभूत है।

९४. इस प्रकार वह स्थितात्म/स्थितप्रज्ञ उत्थित होकर अस्नेह, अचल, चल एवं बाह्य से असमीपस्थ होकर परिव्रजन करे।

९५. संखाय पेसलं धम्मं, दिट्ठिमं परिणिव्वुडे ।

९६. तम्हा संगंति पासह ।

९७. गंथेहिं गढिया णरा, विसण्णा कामक्कंता ।

९८. तम्हा लूहाओ णो परिवित्तसेज्जा ।

९९. जस्सिमे आरंभा सव्वओ सव्वत्ताए सुपरिण्णाया भवंति, जेसिमे लूसिणो णो परिवित्तसंति, से वंता कोहं च माणं च मायं च लोहं च, एस तुट्टे वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

१००. कायस्स वियाघाए, एस संगामसीसे वियाहिए ।

१०१. से हु पारंगमे मुणी, अविहम्ममाणे फलगावयट्ठि, कालोवणीए कंखेज्ज कालं, जाव सरीरभेउ ।

—त्ति बेमि ।

९५. द्रष्टा-पुरुष विशुद्ध धर्म को जानकर परिनिवृत्त बने ।

९६. आसक्ति को देखो ।

९७. ग्रन्थियों में गृद्ध एवं विषण्ण/खिन्न नर कामाक्रान्त है ।

९८. अतः रुक्षता से वित्रस्त न हों ।

९९. जिसे आरम्भ/हिंसा सभी प्रकार से सुपरिज्ञात है, जो रुक्षता से परिवित्रस्त नहीं है, वह क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन कर बन्धन को तोड़े ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

१००. शरीर का व्याघात (कायोत्सर्ग) अन्तरसंग्राम में मुख्य है ।

१०१. वही पारगामी मुनि है, जो अविहन्यमान एवं काष्ठफलकवत् अचल है। वह मृत्यु पर्यन्त शरीर-भेद होने तक मृत्यु की आकांक्षा करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

सप्तम अध्याय 'महापरिज्ञा' है। महा-परिज्ञा विशिष्ट प्रज्ञा की परिक्रमा का परिचायक है। यह अध्ययन व्यवच्छिन्न हो गया है। अतः न उसकी प्रस्तुति की जा सकती है, न कोई परिचर्चा। हम अविराम प्रवेश कर रहे हैं अष्टम अध्याय में।

—••
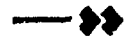
अट्ठं अज्झयणं

विमोक्खो

अष्टम् अध्ययन

विमोक्ष

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'विमोक्ष' है। विमोक्ष साधना का समग्र निचोड़ है। इसका लक्ष्य साधना का प्रस्थान-केन्द्र है और इसकी प्राप्ति उसका विश्राम-केन्द्र।

विमोक्ष मृत्यु नहीं; मृत्यु-विजय का महोत्सव है। आत्मा की नग्नता/ निर्वस्त्रता, कर्ममुक्तता का नाम ही विमोक्ष है। विमोक्ष की साधना अन्तरात्मा में विशुद्धता/स्वतन्त्रता का आध्यात्मिक अनुष्ठान है।

विमोक्ष संसार से छुटकारा है। संसार की गाड़ी राग और द्वेष के दो पहियों के सहारे चलती है। इस गाड़ी से नीचे उतरने का नाम ही विमोक्ष है। विमोक्ष गन्तव्य है। वह वहीं, तभी है, जहाँ/जब व्यक्ति संसार की गाड़ी से स्वयं को अलग करता है।

विमोक्ष निष्प्राणता नहीं, मात्र संसार का निरोध है। संसार में गति तो है, किन्तु प्रगति नहीं। युग युगान्तर के अतीत हो जाने पर भी उसकी यात्रा कोल्हु के बैल की ज्यों बनी रहती है। भिक्षु/साधक वह है, जिसका संसार की यात्रा से मन फट चुका है, विमोक्ष में ही जिसका चित्त टिक चुका है। संन्यास संसार से अभि-निष्क्रमण है और विमोक्ष के राजमार्ग पर आगमन है।

संसार साधक का अतीत है और विमोक्ष भविष्य। उसके वर्धमान होते कदम उसका वर्तमान है। वर्तमान की नींव पर ही भविष्य का महल टिकाऊ होता है। यदि नींव में ही गिरावट की सम्भावनाएँ होंगी, तो महल अपना अस्तित्व कैसे रख पायेगा? विमोक्ष साधनात्मक जीवन-महल का स्वर्णिम कंगूरा/ शिखर है। अतः वर्तमान का सम्यक् अनुद्रष्टा एवं विशुद्ध उपभोक्ता ही भविष्य की उज्ज्वलताओं को आत्मसात् कर सकता है। प्रगति को ध्यान में रखकर वर्तमान में की जाने वाली गति उजले भविष्य की प्रभावापन्न पहचान है।

विमोक्ष जीवन की आखिरी मंजिल है। जीवन के हर कदम पर मृत्यु की पदचाप सुनना लक्ष्य के प्रति होने वाली सुस्ती को जड़ से उखाड़ फेंकना है। साधक को आत्म-सदन की रखवाली के लिए जगी आँख चौकन्ना रहना चाहिये। अन्तर्गृह को सजाने-सँवारने के लिए किया जाने वाला श्रम अपने मोक्षनिष्ठ-व्यक्तित्व को अमृत स्नान कराना है। जीवन की विदाई से पहले अन्तर्यात्रा में अपनी निखिलता को एकटक लगाए रखना स्वयं के प्रति वफादारी है।

साधना का सत्य वीतराग-विज्ञान है। राग संसार से जुड़ना है और विराग उससे टूटना। वीतराग स्वयं की शोध-यात्रा है। अपने आपको पूर्णता देना ही वीतराग का परिणाम है। साधक तो मुक्ति-अभियान का अभियन्ता है। इसीलिए वह ग्रन्थियों से निर्ग्रन्थ है। ग्रन्थि कथरी है, जिसमें चेतना दुबकी बैठी रहती है। ग्रन्थियों को बनाए/बचाए रखना ही परिग्रह है। प्रस्तुत अध्याय साधनात्मक जीवन के लिए अपरिग्रह की जोरदार पहल करता है।

विमोक्ष-यात्रा में परिग्रह एक बोझा है। परिग्रह चाहे बाहर का हो या भीतर का, निर्ग्रन्थ के लिए तो वह 'सूर्य-ग्रहण' जैसा है। इसलिए 'ग्रहण' को प्रभावहीन करने के लिए अपरिग्रह की जीवन्तता अपरिहार्य है। पात्र, वेश, स्थान अथवा बाह्य जगत् को विमोक्ष की दृष्टि से देखने वाला ही आत्म-साक्षात्कार की प्राथमिकता को छू सकता है।

साधक के लिए वस्त्र, पात्र तो क्या, शरीर भी अपने-आप में एक परिग्रह है। मृत्यु तो जन्मसिद्ध अधिकार है। जीवन की सान्ध्य-वेला में मृत्यु की आहट तो सुनाई देगी ही। मृत्यु किसी प्रकार की छीना-झपटी करे, उससे पहले ही साधक काल-करों में देह-कथरी को खुशी-खुशी सौंप दे। स्वयं को ले जाए सिद्धों की बस्ती में, समाधि की छाँह में, जहाँ महकती हैं जीवन की शाश्वतताएँ। खिसक जाना पड़ता है वहाँ से मृत्यु के तमस् को, अमरत्व के अमृत प्रकाश से पराजित होकर।

पढमो उद्देसो

१. से बेमि—समणुण्णस्स वा असमणुण्णस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंवलं वा पायपुंछणं वा णो पाएज्जा, णो णिमंतेज्जा, णो कुज्जा वेयावडियं—परं आढायमाणे।

—त्ति बेमि।

२. धुवं चेयं जाणेज्जा।

३. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंवलं वा पायपुंछणं वा लभियाणो लभिया, भुंजियाणो भुंजिया, पंथं विउत्ता विउकम्म विभत्तं धम्मं झोसेमाणे समेमाणे पलेमाणे, पाएज्ज वा णिमंतेज्ज वा, कुज्जा वेयावडियं परं अणाढायमाणे।

—त्ति बेमि।

४. इहमेगेसिं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ, ते इह आरंभट्ठी अणुवयमाणा हणमाणा, घायमाणा, हणओ यावि समणुजाणमाणा।

५. अदुआ अदिण्णमाइयंति।

६. अदुवा वायाओ विउंजंति, तं जहा—
अत्थि लोए, णत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए, सुकडेत्ति वा दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा पावेत्ति वा, साहुत्ति वा असाहुत्ति वा, सिद्धीत्ति वा, असिद्धीत्ति वा, णिरएत्ति वा, अणिरएत्ति वा।

प्रथम उद्देशक

१. मैं वही कहता हूँ—साधक समनुज्ञ या असमनुज्ञ को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र या पादप्रोंछन न दे, न निमन्त्रित करे, न अत्यंत आदरपूर्वक वैयावृत्य करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

२. यह ध्रुव है, ऐसा समझो।

३. अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोंछन प्राप्त हों या न हों, भोजन किया हो या न किया हो, मार्ग को छोड़कर या लाँघकर भिन्न धर्म का पालन करते हुए, आते हुए या जाते हुए वह दे, निमंत्रित करे और वैयावृत्य करे, तो भी उसे अत्यन्त आदर न दे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

४. इस संसार में कुछ साधकों को आचार-गोचर ज्ञात नहीं है। वे आरम्भार्थी, आरम्भ-समर्थक, हिंसक, घातक अथवा हनन करने वालों का अनुमोदन करते हैं।

५. अथवा वे अदत्तादान करते हैं।

६. अथवा वे वादों का प्रतिपादन करते हैं। जैसे कि—
लोक है, लोक नहीं है, लोक ध्रुव है, लोक अध्रुव है, लोक सादि हैं, लोक अनादि है, लोक सपर्यवसित है, लोक अपर्यवसित है, लोक सुकृत है या दुष्कृत है; कल्याण है या पाप है; साधु है या असाधु है; सिद्धि है या असिद्धि है; नरक है या नरक नहीं है।

७. जमिणं विप्पडिवण्णा मामगंधम्मं पण्णवेमाणा ।

८. एत्थवि जाणह अकम्हा ।

९. एवं तेसिं णो सुअक्खाए, णो सुपण्णत्ते धम्मे भवइ ।

१०. से जहेयं भगवया पवेइयं आसुपण्णेण जाणया पासया ।

११. अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स ।

—त्ति बेमि ।

१२. सव्वत्थ सम्मयं पावं ।

१३. तमेव उवाइकम्म ।

१४. एस महं विवेगे वियाहिए ।

१५. गामे वा अदुवा रण्णे ? णेव गामे णेव रण्णे ।

१६. धम्ममायाणह—पवेइयं माहणेण मइमया ।

१७. जामा तिण्णि उयाहिया, जेसु इमे आरिया संबुज्झमाणा समुट्ठिया ।

१८. जे णिव्वुया पावेहिं कम्मेहिं, अणियाणा ते वियाहिया ।

१९. उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, सव्वओ सव्वावंति च णं पडियक्कं जीवेहिं कम्म-समारंभेणं ।

७. जो इस प्रकार से विप्रतिपन्न/विवाद करते हैं, वे अपने धर्म का निरूपण करते हैं।

८. इसे अकारक समझें।

९. उनका धर्म न सुआख्यात होता है और न सुनिरूपित।

१०. जैसा कि ज्ञाता-द्रष्टा आशुप्रज्ञ भगवान् महावीर के द्वारा प्रतिपादित है।

११. वचन के विषय का गोपन करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१२. लोक सर्वत्र पाप-सम्मत है।

१३. उसका अतिक्रमण करे।

१४. यह महान् विवेक व्याख्यात है।

१५. विवेक गाँव में होता है या अरण्य में? वह न गाँव में होता है, न अरण्य में।

१६. मतिमान् महावीर द्वारा धर्म को समझो!

१७. तीन साधन कहे गये हैं, जिनमें ये आर्य पुरुष सम्बुद्ध होते हुए समुपस्थित होते हैं।

१८. जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं, वे अनिदान कहलाते हैं।

१९. ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशाओं विदिशाओं में सब प्रकार से प्रत्येक जीव के प्रति कर्म-समारम्भ किया जाता है।

२०. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं एएहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवण्णे एएहिं काएहिं दंडं समारंभंते वि समणुजाणेज्जा।

२१. जेवण्णे एएहिं काएहिं दंडं समारंभंति, तेसिं पि वयं लज्जामो।

२२. तं परिण्णाय मेहावी तं वा दंडं, अण्णं वा दंडं, णो दंडभी दंडं समारंभेज्जासि।

—त्ति बेमि।

बीओ उद्देसो

२३. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुण्णगारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभाराययणंसि वा, हुरत्था वा कहिं चि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई बूया—आउसंतो समणा! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएमि, आवसहं वा समुस्सिणोमि, से भुंजह वसह आउसंतो समणा!

२४. भिक्खू तं गाहावइं समणसं सवयसं पडियाइक्खे—आउसंतो गाहावई! णो खलु ते वयणं आढामि, णो खलु ते वयणं परिजाणामि, जो तुमं मम अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएसि, आवसहं वा समुस्सिणासि, से विरओ आउसो गाहावई! एयस्स अकरणयाए।

२०. मेधावी उसे जानकर जीव-कायों के प्रति न स्वयं दण्ड का प्रयोग करे, न दूसरों से इन जीव-कायों के लिए दण्ड प्रयोग करवाए और न जीव-कायों के लिए दण्ड प्रयोग करने वालों का अनुमोदन करे।

२१. जो इन जीव-कायों के प्रति दण्ड समारम्भ करते हैं, उनके प्रति भी हम लज्जित/करुणाशील हैं।

२२. मेधावी उसे जानकर दण्ड देने वाले के प्रति उस दण्ड का या अन्य दण्ड का प्रयोग न करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२३. वह भिक्षु श्मशान, शून्यागार, गिरि-गुफा, वृक्ष-मूल या कुम्हार-आयतन में पराक्रम करता हो, स्थित हो, बैठा हो या सोया हो, वहाँ कहीं पर विचरण करते समय उस भिक्षु के समीप आकर गाथापति/गृहपति कहता है— आयुष्यमान् श्रमण! मैं प्राणियों, भूतों जीवों और सत्त्वों का समारम्भ कर आपके समुद्देश्य से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र, कम्बल या पादप्रोंछन क्रय कर, उधार लेकर, छीन कर आज्ञाहीन होकर आपके समीप लाता हूँ, आवास-गृह बनवाता हूँ। हे आयुष्मान् श्रमण! उसको भोगें और रहें।

२४. भिक्षु उस समनस्वी गाथापति को कहे — आयुष्मान् गाथापति! वास्तव में तुम्हारे वचनों को जानता हूँ, जो तुम प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का समारम्भ कर मेरे समुद्देश्य से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पाद-प्रोंछन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर, आज्ञाहीन होकर मेरे समीप लाते हो, आवास-गृह बनवाते हो। हे आयुष्मान् गाथापति! यह अकरणीय है। इसलिए मैं इनसे विरत हूँ।

२५. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुण्णागारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभारायतणंसि वा, हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अभिहडं आहट्टु चेएइ, आवसहं वा वा समुस्सिणाइ, तं भिक्खुं परिघासेउं।

२६. तं च भिक्खू जाणेज्जा—सहसम्मइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा अयं खलु गाहावई मम अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ, आवसहं वा समुस्सिणाइ, तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए।

—त्ति बेमि।

२७. भिक्खुं च खलु पुट्ठा वा अपुट्ठा वा जे इमे आहच्च गंथा वा फुसंति। से हंता! हणह, खणह, छिंदह, दहह, पयह, आलुंपह, विलुंपह, सहसाकारेह, विप्परामुसह। ते फासे धीरो पुट्ठो अहियासए अदुवा आयार-गोयरमाइक्खे तक्कियाणमणेलिसं। अणुपुव्वेण सम्मं पडिलेहाए आयगुत्ते अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स।

२८. बुद्धेहिं एयं पवेइयं—
से समणुण्णे असमणुण्णस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा नो पाएज्जा, नो निमंतेज्जा, नो कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे।

—त्ति बेमि।

२९. धम्ममायाणह, पवेइयं माहणेण मईमया।

२५. वह भिक्षु श्मशान, शून्यागार, गिरि-गुफा, वृक्ष-मूल या कुम्हार-आयतन में पराक्रम करता हो, स्थित हो, बैठा हो या सोया हो, वहाँ कहीं विचरण करते समय उस भिक्षु के समीप आकर गाथापति आत्मगत प्रेक्षा से प्राणियों, भूतों जीवों और सत्त्वों का समारम्भ कर उद्देश्यपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोंछन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर, आज्ञाहीन होकर देना चाहता है, आवास-गृह बनवाना जाहता है। यह सब वह भिक्षु के निमित्त करता है।

२६. अपनी सम्मति से, अन्य वार्तालाप से या अन्य से सुनकर उस भिक्षु को ज्ञात हो जाता है कि यह गाथापति मेरे लिए प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का समारम्भ कर उद्देश्यपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पानप्रोंछन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर आज्ञाहीन होकर देना चाहता है, आवास-गृह बनवाता है। उसका प्रतिलेख कर भिक्षु आगम एवं आज्ञा के अनुसार सेवन न करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

२७. ग्रन्थियों से स्पृष्ट या अस्पृष्ट होने पर भिक्षु को पकड़कर पीड़ित करते हैं। वे कहते है मारो, हनो, कूटो, छेदो, जलाओ, पकाओ, लूंटो, छीनो काटो, यातना दो। स्पर्शो/कष्टों से स्पृष्ट होने पर धीर-साधक सहन करे। अथवा अन्य रीति से तर्कपूर्वक आचार-गोचर को समझाए। अथवा आत्मगुप्त होकर क्रमशः सम्भव का प्रतिलेख कर वचन-गोचर का गोपन करे — मौन रहे।

२८. बुद्ध-पुरुषों के द्वारा ऐसा प्रवेदित है—
समनुज्ञ-पुरुष असमनुज्ञ-पुरुष को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोंछन प्रदान न करे, निमन्त्रित न करे, विशेष आदर-पूर्वक वैयावृत्य न करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

२९. मतिमान माहण/ज्ञानी द्वारा प्रवेदित धर्म को समझो।

३०. समणुण्णे समणुण्णस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाएज्जा, णिमंतेज्जा कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे।

—त्ति बेमि।

३१. मज्झिमेणं वयसा वि एगे, संबुज्झमाणा समुट्ठिया।

३२. सोच्चा मेहावी वयणं पंडियाणं णिसामिया।

३३. समियाए धम्मे, आरिएहिं पवेइए।

३४. ते अणवकंखमाणा अणाइवाएमाणा अपरिग्गहमाणा णो परिग्गहावंती सव्वावंती च णं लोगंसि।

३५. णिहाय दंडं पाणेहिं, पावं कम्मं अकुव्वमाणे, एस महं अगंथे वियाहिए।

३६. ओए जुइमस्स खेयण्णे उववायं चवणं च णच्चा।

३७. आहारोवचया देहा, परिसह-पभंगुरा।

३८. पासह एगे सव्विदिएहिं परिगिलायमाणेहिं।

३९. ओए दयं दयइ।

४०. जे सन्निहाण-सत्थस्स खेयण्णे से भिक्खू कालण्णे बलण्णे मायण्णे खणण्णे विणयण्णे समयण्णे।

४१. परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिण्णे।

४२. दुहओ छेत्ता णियाई।

३०. समनुज्ञ-पुरुष समनुज्ञ-पुरुष को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोंदन प्रदान करे, निमन्त्रित करे, विशेष आदरपूर्वक वैयावृत्य करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

३१. कुछ पुरुष मध्यम वय में उपस्थित होकर भी सम्बुध्यमान होते हैं ।

३२. मेधावी-पुरुष पण्डितों के निःश्रित वचनों को सुनकर [प्रव्रजित होते हैं ।]

३३. आर्य-पुरुषों द्वारा प्रवेदित है कि समता में धर्म है ।

३४. वे अनाकांक्षी, अनतिपाती, अपरिग्रही पुरुष समस्त लोक में परिग्रही नहीं हैं ।

३५. प्राणियों के दण्ड/हिंसा को छोड़कर पाप-कर्म न करने वाला यह मुनि महान् अग्रन्थ कहलाता है ।

३६. उत्पाद और च्यवन को जानकर द्युतिमान-पुरुष के लिए खेदज्ञता और ओज है ।

३७. शरीर आहार से उपचित होता है और परिषह से प्रभंगुर ।

३८. देखो ! कुछ लोग सर्वेन्द्रियों से परिग्लायमान होते हैं ।

३९. ओज दया देता है ।

४०. जो सन्निधान-शस्त्र का खेदज्ञ/ज्ञाता है, वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ एवं समयज्ञ है ।

४१. परिग्रह के प्रति ममत्व न करने वाला समय का अनुष्ठाता एवं अप्रतिज्ञ है ।

४२. दोनों—राग और द्वेष को छेदकर विचरण करे ।

४३. तं भिक्खुं सीयफास-परिवेवमाण-गायं उवसंकमित्ता गाहावई बूया—
'आउसंतो समणा ! णो खलु ते गामधम्मा उव्वाहंति ?'

'आउसंतो गाहावई ! णो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति । सीयफासं णो खलु अहं संचाएमि अहियासित्तए । णो खलु मे कप्पइ अगणिकायं उज्जालेत्तए वा पज्जालेत्तए वा, कायं आयावेत्तए वा अण्णेसिं वा वयणाओ ।'

४४. सिया से एवं वदंतस्स परो अगणिकायं उज्जालेत्ता पज्जालेत्ता कायं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

४५. जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पाय-चउत्थेहिं, तस्स णं णो एवं भवइ—चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ।

४६. से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा । णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा । अपलिओवमाणे गामंतरेसु, ओमचेलिए, एयं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं ।

४७, अह पुण एवं जाणेज्जा—उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा । अदुवा संतरुत्तरे, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले ।

४८. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

४३. शीतस्पर्श से प्रकम्पित शरीर वाले उस भिक्षु के समीप जाकर गाथापति बोले—आयुष्मान् श्रमण ! क्या तुम्हें ग्राम्य-धर्म (विषय-वासना) बाधित नहीं करते ?

आयुष्मान् गाथापति ! मुझे ग्राम्य-धर्म बाधित नहीं करते। मैं शीतस्पर्श को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ। अग्निकाय को उज्ज्वलित या प्रज्वलित करना अथवा दूसरों के शरीर से अपने शरीर को आतापित या प्रतापित करना मेरे लिए कल्पित/उचित नहीं है।

४४. इस प्रकार भिक्षु के कहने पर भी वह गाथापति अग्नि-काय को उज्ज्वलित या प्रज्वलित कर शरीर को आतापित या प्रतापित करे तो भिक्षु आगम एवं आज्ञा के अनुसार प्रतिलेख कर सेवन न करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

४५. जो भिक्षु तीन वस्त्र और चौथे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नहीं होता—चौथे वस्त्र की याचना करूँगा।

४६. वह यथा-एषणीय/ग्राह्य वस्त्रों की याचना करे। यथा परिगृहीत वस्त्रों को धारण करे। न धोए, न रंगे और न धोए-रंगे वस्त्रों को धारण करे। ग्रामान्तर होते समय उन्हें न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री/उपकरण है।

४७. भिक्षु यह जाने कि हेमंत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रों का परिष्ठापन/विसर्जन करे या एक कम उत्तरीय रखे या एक-शाटक रहे अथवा अचेल/वस्त्ररहित हो जाए।

४८. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

४९. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

५०. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि, णालमहमंसि सीयफासं अहियासित्तए, से वसुमं सव्व-समण्णागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरण-याए आउट्टे।

५१. तवस्सिणो हु तं सेयं, जमेगे विहमाइए। तत्थावि तस्स कालपरियाए से वि तत्थ वि अंतिकारए।

५२. इच्चेयं विमोहायतणं हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, आणुगामियं।

—त्ति बेमि।

पंचमो उद्देसो

५३. जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायतइएहिं, तस्स णं णो एवं भवइ—तइयं वत्थं जाइस्सामि।

५४. से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा। णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा। अपलिओवमाणे गामंतरेसु, ओमचेलिए, एयं खु तस्स भिक्खुस्स सामग्गियं।

५५. अह पुण एवं जाणेज्जा—उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरि-जुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा। अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले।

५६. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

४९. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

५०. जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत हो — मैं स्पृष्ट हूँ। शीत स्पर्श सहन करने में समर्थ नहीं हूँ। वह वसुमान/संयमी अपनी सर्व समन्वागत प्रज्ञा से आवर्त में संलग्न न हो।

५१. तपस्वी के लिए अवशान/समाधि मरण ही श्रेयस्कर है। काल-मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी [कर्म] अन्त करने वाला हो जाता है।

५२. यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमंकर, निःश्रेयस्कर और आनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचम उद्देशक

५३. जो भिक्षु दो वस्त्र और तीसरे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नहीं होता—तीसरे वस्त्र की याचना करूँगा।

५४. वह यथा-एषणीय वस्त्रों की याचना करे। यथा परिगृहीत वस्त्रों को धारण करे। न धोए, न रंगे और न धोए-रंगे हुए वस्त्रों को धारण करे। ग्रामान्तर होते समय उन्हें न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री है।

५५. भिक्षु यह जाने कि हेमंत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रों का परिष्ठापन/विसर्जन करे या एक कम उत्तरीय रखे या एक-शाटक रहे अथवा अचेल/वस्त्ररहित हो जाए।

५६. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

५७. जमेयं भगवया पवेदितं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजिाणिया ।

५८. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—'पुट्ठो अवलो अहमंसि, नालमहमंसि गिहंतर-संकमणं भिक्खायरिय-गमणाए' । से एवं वदंतस्स परो अभिहडं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु दलएज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा 'आउसंतो गाहावई ! णो खलु में कप्पइ अभिहडे असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा भोत्तए वा, पायए वा, अण्णे वा एयप्पगारे ।'

५९. जस्स णं भिक्खुस्स अयं पगप्पे—अहं च खलु पडिण्णत्तो अपडिण्णत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं, अभिकंख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि ।

६०. अहं वा वि खलु अपडिण्णत्तो पडिण्णत्तस्स, अगिलाणो गिलाणस्स, अभिकंख साहम्मिअस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए ।

६१. आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि ।

६२. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

६३. जमेयं भगवया पवेदियं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

६४. एवं से अहाकिट्टियमेव धम्मं समहिजाणमाणे संते विरए सुसमाहियलेसे ।

६५. तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए ।

५७. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

५८. जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत हो — मैं स्पृष्ट हूँ, अबल हूँ। मैं भिक्षाचर्या-गमन के लिए गृहान्तर-संक्रमण में असमर्थ हूँ। ऐसा कहने वाले के लिए कोई गृहस्थ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सम्मुख लाकर दे तो वह पूर्व आलोडन कर कहे हे आयुष्मान् गृहपति! सम्मुख लाया हुआ, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य या अन्य किसी आहार को खाना-पीना मेरे लिए कल्पित/ग्राह्य नहीं है।

५९. जिस भिक्षु का यह प्रकल्प/प्रतिज्ञा है — मैं अप्रतिज्ञप्त से प्रतिज्ञप्त हूँ, अग्लान से ग्लान हूँ, सार्धमिक की अभिकांक्षा करता हुआ वैयावृत्य स्वीकार करूँगा।

६०. मैं भी प्रतिज्ञप्त की अप्रतिज्ञप्त से, ग्लान की अग्लान से सार्धमिक की, अभिकांक्षा करता हुआ वैयावृत्य करने के लिए प्रयत्न करूँगा।

६१. प्रतिज्ञा लेकर आहार लाऊँगा और लाया हुआ स्वीकार करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार लाऊँगा, किन्तु लाया हुआ स्वीकार नहीं करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार नहीं लाऊँगा, किन्तु लाया हुआ स्वीकार करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार नहीं लाऊँगा और लाया हुआ स्वीकार नहीं करूँगा।

६२. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

६३. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, सब रूप से समत्व का ही पालन करे।

६४. इस प्रकार वह यथा-कीर्तित धर्म को सम्यक् प्रकार से जानता हुआ शान्त, विरत एवं सुसमाहित लेश्यवाला बने।

६५. काल/मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्तकारक हो जाता है।

६६. इच्चेयं विमोहायतणं हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, आणुगामियं ।

—त्ति बेमि ।

षष्ठ उद्देसो

६७. जे भिक्खू एगेण वत्थेण परिवुसिए पायविईएण, तस्स णो एवं भवइ—विइयं वत्थं जाइस्सामि ।

६८. से अहेसणिज्जं वत्थं जाएज्जा अहापरिग्गहियं वत्थं धारेज्जा । णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्तं वत्थं धारेज्जा । अपलिओवमाणे गामंतरेसु, ओमचेलिए, एयं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं ।

६९. अह पुण एवं जाणेज्जा—उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरि॰ जुण्णं वत्थं परिट्ठवेज्जा । अदुवा अचेले ।

७०. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

७१. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

७२. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ — एगो अहमंसि, ण मे अत्थि कोइ, ण याहमवि कस्सइ, एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा ।

७३. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

७४. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

६६. यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमंकर, निःश्रेयस्कर और आनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

षष्ठ उद्देशक

६७. जो भिक्षु एक वस्त्र और दूसरे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नहीं होता—दूसरे वस्त्र की याचना करूँगा।

६८. वह यथा-एषणीय वस्त्रों की याचना करे। यथा-परिगृहीत वस्त्रों को धारण करे। न धोए, न रंगे और न धोए-रंगे हुए वस्त्रों को धारण करे। ग्रामान्तर होते समय उन्हें न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री है।

६९. भिक्षु यह जाने कि हेमंत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रों का परिष्ठापन/विसर्जन करे अथवा अचेल/निवस्त्र हो जाए।

७०. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७१. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से, सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

७२. जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत होता है — मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। इस प्रकार वह भिक्षु आत्मा को एकाकी समझे।

७३. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७४. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से समत्व का ही पालन करे।

७५. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ वा हणुयाओ वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसाएमाणे, से अणासायमाणे।

७६. लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

७७. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया।

७८. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि च खलु अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेज्जा, आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेत्ता, कसाए पयणुए किच्चा, समाहियच्चे फलगावयट्ठी।

७९. उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे।

८०. अणुपविसित्ता गामं वा, णगरं वा, खेडं वा, कब्बडं वा, मडंबं वा, पट्टणं वा, दोणमुहं वा, आगरं वा, आसम वा, सण्णिवेसं वा, णिगमं वा, रायहाणिं वा, तणाइं जाएज्जा, तणाइं जाएत्ता, से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमेत्ता अप्पंडे अप्प-पाणे अप्प-बीए अप्प-हरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडासंताणए, पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय तणाइं संथरेज्जा, तणाइं संथरेत्ता एत्थ वि समए इत्तरियं कुज्जा।

८१. तं सच्चं सच्चावाई ओए तिण्णे छिण्ण-कहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चाण भेऊरं कायं, संविहूणिय विरूवरूवे परिसहोवसग्गे अस्सिं विस्सं भइत्ता भेरवमणुचिण्णे।

८२. तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए।

७५. भिक्षु या भिक्षुणी अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का आहार करते समय आस्वाद लेते हुए बाएँ जवड़े से दाएँ जवड़े में संचार न करे, आस्वाद लेते हुए दाएँ जवड़े से बाएँ जवड़े में संचार न करे। वे अनास्वादी हों।

७६. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७७. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

७८. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं इस समय इस शरीर को अनुपूर्वक परिवहन करने में ग्लान/असमर्थ हूँ। वह क्रमशः आहार का संवर्तन/संक्षेप करे। क्रमशः आहार का संवर्तन कर, कषायों को प्रतनु/कृश कर समाधि में काष्ठ-फलकवत् निश्चल बने।

७९. संयम उद्यत भिक्षु अभिनिवृत्त बने।

८०. ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट/कस्बा, मडम्ब/बस्ती, पत्तन, द्रोणमुख/बन्दरगाह, आकर/खान, आश्रम, सन्निवेश/धर्मशाला, निगम या राजधानी में प्रवेश कर तृण की याचना करे। तृण की याचना कर, उसे प्राप्त कर एकान्त में चला जाए। एकान्त में जाकर अण्ड-रहित, प्राणी-रहित, बीज-रहित, हरित-रहित, ओस-रहित, उदक-रहित, पतंग, पनक/काई, जलमिश्रित-मिट्टी-मकड़ी-जाल से रहित, स्थान को सम्यक् प्रतिलेख कर प्रमार्जित कर तृण का संथार/बिछौना करे। तृण-संस्तार कर उसी समय 'इत्वरिक'/समाधि-मरण स्वीकार करे।

८१. यही सत्य है। सत्यवादी, ओजस्वी, तीर्ण, वक्तव्य-छिन्न/मौनव्रती, अतीतार्थ/कृतार्थ, अनातीत/बन्धनमुक्त साधक भंगुर शरीर को छोड़कर, विविध प्रकार के परीषहों-उपसर्गों को धुन कर इस सत्य में विश्वास कर के कठोरता का पालन करता है।

८२. काल/मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्त-कारक हो जाता है।

८३. इच्चेयं विमोहायतणं हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, अणुगामियं ।

—त्ति बेमि ।

सत्तम उद्देसो

८४. जे भिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स णं एवं भवइ—चाएमि अहं तणफासं अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफासं अहियासित्तए, दंस-मसगफासं अहियासित्तए, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायणं चहं णो संचाएमि अहियासित्तए, एवं से कप्पइ कडिबंधणं धारित्तए ।

८५. अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंस-मसगफासा फुसंति, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ अचेले ।

८६. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

८७. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

८८. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ।

८९. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि ।

८३. यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमंकर, निःश्रेयस्कर और आनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

सप्तम उद्देशक

८४. जो भिक्षु अचेल रहने की पर्युपासना करता है, उसे ऐसा होता है — मैं तृण-स्पर्श/तृण-पीड़ा का त्याग करता हूँ, सहन करता हूँ, शीत-स्पर्श सहन करता हूँ, तेजस्-स्पर्श सहन करता हूँ, दंश-मसक-स्पर्श सहन करता हूँ, लज्जा-प्रतिच्छादन का मैं त्याग नहीं करता हूँ. सहन करता हूँ। इस प्रकार वह कटि-बन्धन को धारण करने में समर्थ होता है।

८५. अथवा पराक्रम करते हुए, अचेल तृण-स्पर्श का स्पर्श करते हैं, शीत-स्पर्श का स्पर्श करते हैं, तेजस्-स्पर्श का स्पर्श करते हैं, दंश-मसक-स्पर्श का स्पर्श करते हैं। अचेल विविध प्रकार के अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्श सहन करता है।

८६. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

८७. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

८८. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं अन्य भिक्षुओं को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर दूँगा और लाया हुआ उपभोग करूँगा।

८९. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं अन्य भिक्षुओं को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर दूँगा और लाया हुआ उपभोग नहीं करूँगा।

९०. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु णो दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ।

९१. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु णो दलइस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि ।

९२. अहं च खलु तेण अहाइरित्तेणं अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए ।

९३. अहं वावि तेण अहाइरित्तेणं अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा अभिकंख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि ।

९४. लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

९५. जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

९६. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि च खलु अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेज्जा, आणुपुव्वेणं आहारं संवट्टेत्ता, कसाए पयणुए किच्चा, समाहियच्चे फलगावयट्ठी ।

९७. उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे ।

९०. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं अन्य भिक्षुओं को अशन, पान, खाद्य ,या स्वाद्य लाकर नहीं दूँगा, परन्तु लाया हुआ उपभोग करूँगा।

९१. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं अन्य भिक्षुओं को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर न दूँगा और न लाया हुआ उपभोग करूँगा।

९२. मैं यथारिक्त/अवशिष्ट यथा-एपणीय, यथा-परिगृहीत अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से अभिकांक्षित सार्धमिक का द्वारा किये जाने वाले वैयावृत्य करूँगा।

९३. मैं भी यथारिक्त, यथा-एपणीय, यथा-परिगृहीत, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य से अभिकांक्षित साधर्मिक द्वारा किये जाने वाले वैयावृत्य को स्वीकार करूँगा।

९४. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

९५. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप में जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

९६. जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं इस समय इस शरीर को अनुपूर्वक परिवहन करने में ग्लान/असमर्थ हूँ। वह क्रमशः आहार का संवर्तन/संक्षेप करे। क्रमशः आहार का संवर्तन कर, कपायों को प्रतनु/कृश कर समाधि में काष्ठ-फलकवत् निश्चल बने।

९७. संयम उद्यत भिक्षु अभिनिवृत्त बने।

९८. अणुपविसित्ता गामं वा, णगरं वा, खेडं वा, कव्वडं वा, मडंबं वा, पट्टणं वा, दोणमुहं वा, आगरं वा, आसमं वा, सण्णिवेसं वा, णिगमं वा, रायहाणिं वा, तणाइं जाएज्जा, तणाइं जाएत्ता, से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमेत्ता अप्पंडे अप्प-पाणे अप्प-बीए अप्प-हरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडासंताणए, पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय तणाइं संथरेज्जा, तणाइं संथरेत्ता एत्थ वि समए कायं च, जोगं च, इरियं च, पच्चक्खाएज्जा ।

९९. तं सच्चं सच्चावाई ओए तिण्णे छिण्ण-कहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चाण भेऊरं कायं, संविहूणिय विरूवरूवे परिसहोवसग्गे अस्सिं विस्सं भइत्ता भेरवमणुचिण्णे ।

१००. तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए ।

१०१. इच्चेयं विमोहायतणं हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, आणुगामियं ।

—त्ति बेमि ।

अट्ठमो उद्देसो

१०२. अणुपुव्वेणं विमोहाइं. जाइं धीरा समासज्ज ।
वसुमंतो मइमंतो, सव्वं णच्चा अणेलिसं ॥

१०३. दुविहं पि विइत्ताणं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ।
अणुपुव्वीए संखाए, आरंभाओ तिउट्टइ ॥

६८. ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट/कस्वा, मडम्व/वस्ती, पत्तन, द्रोणमुख/वन्दरगाह, आकर/खान, आश्रम, सन्निवेश/धर्मशाला, निगम या राजधानी में प्रवेश कर तृण की याचना करे। तृण की याचना कर, उसे प्राप्त कर एकान्त में चला जाए। एकान्त में जाकर अण्ड-रहित, प्राणी-रहित, वीज-रहित, हरित-रहित, ओस-रहित, उदक-रहित, पतंग, पनक/काई, जलमिश्रित-मिट्टी-मकड़ी-जाल से रहित, स्थान को सम्यक् प्रतिलेख कर प्रमार्जित कर तृण का संथार/संस्तार/विछौना करे। तृण-संस्तार कर उसी समय शरीर योग और ईर्या-पथ/गमनागमन का प्रत्याख्यान करे।

६६. यही सत्य है। सत्यवादी, ओजस्वी, तीर्ण, वक्तव्य-छिन्न/मौनव्रती, अतीतार्थ/कृतार्थ, अनातीत/वन्धनमुक्त साधक भंगुर शरीर को छोड़कर, विविध प्रकार के परीषहों-उपसर्गों को धुन कर इस सत्य में विश्वास कर के कठोरता का पालन करता है।

१००. काल/मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्त-कारक हो जाता है।

१०१. यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमंकर, निःश्रेयस्कर और अनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

अष्टम उद्देशक

१०२. जो धीर-पुरुष वसुमान् एवं मतिमान हैं, उन्होंने असाधारण को जानकर क्रमशः विमोह को धारण करते हैं।

१०३. वुद्ध-पुरुष धर्म के पारगामी होते हैं। क्रमशः वाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों को जानकर-समझकर आरम्भ/हिंसा से मुक्त होते हैं।

१०४. कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारो तितिक्खए ।
अह भिक्खू गिलाएज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥

१०५. जीवियं णाभिकंखेज्जा, मरणं णोवि पत्थए ।
दुहतोवि ण सज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ॥

१०६. मज्झत्थो णिज्जरापेही, समाहिमणुपालए ।
अंतो बहिं विऊसिज्ज, अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥

१०७. जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ।
तस्सेव अंतरद्धाए, खिप्पं सिक्खेज्ज पंडिए ॥

१०८. गामे वा अदुआ रण्णे, थंडिलं पडिलेहिया ।
अप्पपाणं तु विण्णाय, तणाइं संथरे मुणी ॥

१०९. अणाहारो तुअट्टेज्जा, पुट्ठो तत्थ हियासए ।
णाइवेलं उवचरे, माणुस्सेहिं वि पुट्ठओ ॥

११०. संसप्पगा य जे पाणा, जे य उड्ढमहोचरा ।
भुंजंति मंस-सोणियं, ण छणे ण पमज्जए ॥

१११. पाणा देहं विहिंसंति, ठाणाओ ण वि उब्भमे ।
आसवेहिं विवित्तेहिं, तिप्पमाणेहियासए ॥

११२. गंथेहिं विवित्तेहिं, आउकालस्स पारए ।
पग्गहियतरगं चेयं, दवियस्स वियाणओ ॥

११३. अयं से अवरे धम्मे, णायपुत्तेण साहिए ।
आयवज्जं पडीयारं, विजहिज्जा तिहा-तिहा ॥

११४. हरिएसु ण णिवज्जेज्जा, थंडिलं मुणिआ सए ।
विउसिज्ज अणाहारो, पुट्ठो तत्थहियासए ॥

१०४. यह भिक्षु कषाय को कृश एवं आहार को कम कर तितिक्षा/सहन करे। अन्तकाल में आहार की ग्लानि करे।

१०५. जीवन की अभिकांक्षा न करे और मरण की प्रार्थना न करे। जीवन तथा मरण — दोनों को न चाहे।

१०६. मध्यस्थ और निर्जराप्रेक्षी समाधि का अनुपालन करे। अन्तर एवं बाह्य का विसर्जन कर शुद्ध अध्यात्म की एषणा करे।

१०७. अपनी आयु की कुशलता का जो कुछ भी उपक्रम है, उसे समझे। पण्डित-पुरुष उसके ही अन्तर-मार्ग / आयु-काल में शीघ्र [समाधि-मरण] की शिक्षा ग्रहण करे।

१०८. मुनि ग्राम या अरण्य में प्राणरहित स्थण्डिल/स्थल को प्रतिलेख कर तथा जानकर तृण-संस्तार करे।

१०९. वह अनाहार का प्रवर्तन करे। मनुष्य कृत स्पर्शो से स्पृष्ट होने पर सहन करे। वेला/समय का उल्लंघन न करे।

११०. ऊर्ध्वचर, अधोचर और संसर्पक प्राणी मांस और रक्त का भोजन करे तो उनका न हनन करे, न निवारण।

१११. ये प्राणी शरीर का घात करते हैं, इसलिए स्थान न छोड़े। आस्रव से अलग हो कर आत्म-तृप्त होता हुआ उपसर्गों को सहन करे।

११२. ग्रन्थियों से विमुक्त होकर आयुकाल का पारगामी होता है। द्रविक भिक्षु के लिए यह अनशन अग्राह्य है, ऐसा जानना चाहिये।

११३. ज्ञातपुत्र द्वारा साधित यही धर्म श्रेष्ठ है। मन, वचन, काया के त्रिविध योग से प्रतिचार/सेवा स्वयं के लिए वर्जनीय है, अतः त्याग दे।

११४. हरियाली पर निवर्तन/विश्राम न करे, स्थण्डिल/स्थान को जानकर/प्रतिलेख कर सोए। अनाहारी भिक्षु कायोत्सर्ग कर वहाँ स्पर्शो को सहन करे।

११५. इंदिएहिं गिलायंते, समियं साहरे मुणी ।
तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिए ।।

११६. अभिक्कमे पडिक्कमे, संकुचए पसारए ।
काय-साहारणट्ठाए, एत्थं वावि अचेयणे ।।

११७. परक्कमे परिकिलंते, अदुवा चिट्ठे अहायए ।
ठाणेण परिकिलंते, णिसिएज्जा य अंतसो ।।

११८. आसीणे णेलिसं मरणं, इंदियाणि समीरए ।
कोलावासं समासज्ज, वितहं पाउरेसए ।।

११९. जओ वज्जं समुप्पज्जे, ण तत्थ अवलंवए ।
तओ उक्कसे अप्पाणं, सव्वे फासेहियासए ।।

१२०. अयं चायतयरे सिया, जो एवं अणुपालए ।
सव्वगायणिरोहेवि, ठाणाओ ण वि उब्भमे ।।

१२१. अयं से उत्तमे धम्मे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ।
अचिरं पडिलेहित्ता, विहरे चिट्ठ माहणे ।।

१२२. अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पगं ।
वोसिरे सव्वसो कायं, ण मे देहे परीसहा ।।

१२३. जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा इय संखया ।
संवुडे देहभेयाए, इय पण्णेहियासए ।।

१२४. भेउरेसु ण रज्जेज्जा, कामेसु बहुयरेसु वि ।
इच्छा-लोभं ण सेवेज्जा, धुव वण्णं सपेहिया ।।

११५. मुनि इन्द्रियों से ग्लानि करता हुआ समित होकर स्थित रहे। इस प्रकार जो अचल और समाहित है, वह अगर्ह्य/अनिन्द्य है।

११६. अभिक्रम, प्रतिक्रम, संकुचन, प्रसारण, शरीर-साधारणीकरण की स्थिति में अचेतन/समाविस्थ रहे।

११७. परिक्लान्त होने पर पराक्रम करे अथवा यथामुद्रा में स्थित रहे। स्थित रहने से परिक्लान्त होने पर अन्त में बैठ जाए।

११८. समाधि मरण में आसीन साधक इन्द्रियों का समीकरण करे। कोलावास/पीठासन को वितथ्य समझकर अन्य स्थिति की एषणा करे।

११९. जिससे वज्र/कठोर-भाव उत्पन्न हो, उसका अवलम्बन न लें। उससे अपना उत्कर्ष करे। सभी स्पर्शों को सहन करे।

१२०. यह [समाधिमरण] उत्तमतर है। जो साधक इस प्रकार अनुपालन करता है, वह सम्पूर्ण गात्र के निरोध होने पर भी स्थान से भटकता नहीं है।

१२१ पूर्व स्थान का ग्रहण किये रहना ही उत्तम धर्म है। अचिर/स्थान का प्रतिलेख कर माहन-पुरुष स्थित रहे।

१२२. अचित्त को स्वीकार कर स्वयं को वहाँ स्थापित करे। सर्वशः काया का विसर्जन (कायोत्सर्ग) कर दे। परीषह है, किन्तु यह शरीर मेरा नहीं है।

१२३ परिषह और उपसर्ग जीवन-पर्यन्त हैं। यह जानकर संवृत बने। देह-भेद होने पर प्राज्ञ-पुरुष सहन करे।

१२४. विविध प्रकार के क्षणभंगुर काम-भोगों में रंजित न हो। ध्रुव वर्ण (मोक्ष) का संप्रेक्षक इच्छा-लोभ का सेवन न करे।

१२५. सासएहिं णिमंतेज्जा, दिव्वं मायं ण सद्दहे।
तं पडिबुज्झ माहणे, सव्वं णूमं विहूणिया॥

१२६. सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए, आउकालस्स पारए।
तितिक्खं परमं णच्चा, विमोहण्णयरं हियं॥

—त्ति बेमि।

१२५. शाश्वत को निमन्त्रित करे। दिव्य माया पर श्रद्धा न करे। माहन-पुरुप इसे समझे और सभी प्रकार के छल-कपट को छोड़ दे।

१२६. सभी अर्थो/विपयों से अमूर्छित आयुकाल का पारमामी होता है। तितिक्षा को परम जानकर हितकारी अनन्य विमोह को स्वीकार करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

नवमं अज्झयणं

उवहाणा-सुयं

नवम अध्ययन

उपधान-श्रुत

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'उपधान श्रुत' है। यह व्यक्तित्व वेद का ही उपनाम है। सामीप्यपूर्वक सुनने के कारण भी इस अध्याय का यह नामकरण हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय महावीर के महाजीवन का खुल्ला दस्तावेज है। प्रस्तुत अध्याय का नायक संकल्प-धनी/लौह-पुरुष की संघर्षजयी जीवन-यात्रा का अनूठा उदाहरण है। महावीर आत्म-विजय बनाम लोक-विजय का पर्याय हैं। वे स्वयं ही प्रमाण हैं अपने परमात्म-स्वरूप के। उनकी भगवत्ता जन्मजात नहीं, अपितु कर्म-जन्य है। उन्होंने खुद से लड़कर ही खुद की भगवत्ता/यशस्विता के मापदण्ड प्रस्तुत किये। संघर्ष के सामने घुटने टेकना उनके आत्मयोग में कहाँ था! उनका कुन्दन तो संघर्ष की आँच में ही निखरा था।

कुछ लोग जन्म से महान होते हैं तो कुछ महानता प्राप्त कर लेते हैं। महावीर के मामले में ये दोनों ही तथ्य इस कदर गुंथे हुए हैं कि उनका व्यक्तित्व संघर्षों का संगम बनकर उभरा है। उनके जीवन में कदम-कदम पर परीक्षाओं/कसौटियों की घड़ियाँ आईं, किन्तु वे हर बार सौ टंच खरे उतरे और सफलता उनके सामने सदा नतमस्तक हुई।

महावीर राजकुमार थे। घर-गृहस्थी के बीच रहते भी उनके मन पर लेप कहाँ था संसार का! कमल की पंखुड़ियों की तरह ऊपर था उनका सिंहासन/जीवन-शासन, दुनियादारी के उथल-पुथल मचाते जल से।

प्रकृति की कलरवता ने महावीर को अपने आँचल में आने के लिए निमंत्रित किया। और उनके वीर-चरण वर्धमान हो गये वीतराग-पगडण्डी पर। उनका महाभिनिष्क्रमण/महातिक्रमण तो सत्य प्राप्ति का जागरूक अभियान था। उनका रोम-रोम प्रयत्नशील बना जीवन के गूढ़तम सत्यों का आविष्कार करने में।

महावीर ने स्वयं को शिशु जैसा बना लिया। उनकी साधनात्मक जीवन-चर्या यद्यपि चैतन्य-विकास के इतिहास में एक नये अध्याय का सूत्रपात थी, किन्तु भोली जनता ने उसे अपनी लोक-संस्कृति के लिए खौफनाक समझा। उन्हें मारा, पीटा, दुत्कारा, औंधा लटकाया। जितनी अवहेलना, उपेक्षा, ताड़ना और तर्जना महावीर को भोगनी, झेलनी पड़ी, उसका साम्य कौन कर सकता है। ये सब तो साधन थे विश्व को गहराई से समझने के। आखिर उनका तप रङ्ग लाया। परम-ज्ञान ने सदा सदा के लिए उनके साथ वासा कर लिया। फिर तो उनकी पगध्वनि भी संसृति के लिए अध्यात्म की झंकृति बन गई।

महावीर तो धवल हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर हैं। उनकी अंगुली थाम कर, चरणों में शीश नमाकर पता नहीं अब तक कितने-कितने लोगों ने स्वयं का सरगम सुना है। वे तो सर्वोदय-तीर्थ हैं। उनके घाट से क्षुद्र भी तिर गए।

महावीर की जीवन-चर्या अस्तित्व की विरलतम घटना है। निष्कम्प, निर्धूम, चैतन्य-ज्योति ही महावीर का परिचय-पत्र है। ध्यान उनकी कुंजी है और जागरूकता/अप्रमत्तता उनका व्यक्तित्व। वे श्रद्धा नहीं, अपितु शोध हैं। श्रद्धा खोजने से पहले मानना है और शोध तथ्य का उघाड़ना है। सत्यद्रष्टा के लिए शोध प्राथमिक होता है और श्रद्धा आनुषंगिक। सत्य को तथ्य के माध्यम से उद्घाटित करने के कारण ही वे तथागत हैं और सर्वोदयी नेतृत्व वहन करने की वजह से तीर्थङ्कर हैं। उनकी बातें विज्ञान की प्रयोगशालाओं में भी प्रतिष्ठित होती जा रही हैं। महावीर, सचमुच विज्ञान और गणित की विजय के अद्भुत स्मारक हैं।

प्रस्तुत अध्याय महावीर के साधनात्मक जीवन का सहज वर्ण विज्ञान है। यहां उनका बढ़ा चढ़ाकर बखान नहीं है, अपितु वास्तविकता का प्रामाणिक छायांकन है। इस अध्याय का आकाश मुमुक्षु/भिक्षु के सामने ज्यों-ज्यों खुलता जाएगा साधना के आदर्श मापदंड उभरते चले आएँगे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उन्हीं की विराट अस्मिता है। संन्यस्त जीवन की ऊँची से ऊँची आचार-संहिता का नाम आयार-सुत्तं है, जो सद्विचार की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन करता है।

पढमो उद्देसो

१. अहासुयं वइस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीयत्था ।।

२. णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमंते ।
से पारए आवकहाए, एयं खु अणुधम्मियं तस्स ।।

३. चत्तारि साहिए मासे, बहवे पाण-जाइया आगम्म ।
अभिरुज्झ कायं विहरिंसु, आरुसियाणं तत्थ हिंसिसु ।।

४. संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं ।
अचेलए तओ चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।।

५. अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं, चक्खुमासज्ज अंतसो झायइ ।
अह चक्खु-भीया सहिया, तं 'हंता हंता' बहवे कंदिसु ।।

६. सयणेहिं विइमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिण्णाय ।
सागारियं ण सेवे, इय से सयं पवेसिया झाइ ।।

७. जे के इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से झाइ ।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु, गच्छइ णाइवत्तई अंजू ।।

प्रथम उद्देशक

१. जैसा सुना है, वैसा कहूँगा। वे श्रमण भगवान् महावीर अभिनिष्क्रमण एवं ज्ञान-प्राप्त कर हेमन्त में शीघ्र विहार कर गए।

२. [भगवान् ने संकल्प किया] उस हेमन्त में इस वस्त्र से शरीर को आच्छादित नहीं करूँगा। वे पारगामी जीवन-पर्यन्त अनुधार्मिक रहे, यही उनकी विशेषता है।

३. चार माह से अधिक समय तक बहुत से प्राणी आकर एवं चढ़कर शरीर पर चलते और उस पर आरूढ़ होकर काट लेते।

४. भगवान् ने संवत्सर (एक वर्ष) से अधिक माह तक उस वस्त्र को नहीं छोड़ा। इसके बाद उस वस्त्र को भगवान् ने :नहीं छोड़ा। इसके बाद उस वस्त्र को छोड़कर अनगार महावीर अचेलक एवं त्यागी हो गए।

५. अथवा पुरुष-प्रमाण/प्रहर-प्रहर तक तिर्यग्भित्ति को चक्षु से देखकर अन्ततः ध्यान-मग्न हो गए। चक्षु से भयभीत बालक उनके लिए 'हंत ! हंत !' चिल्लाने लगे।

६. जनसंकुल स्थानों पर महावीर स्त्रियों को जानकर भी सागारिक/ग्राम्यधर्म का सेवन नहीं करते थे। वे स्वयं में प्रवेश कर ध्यान करते थे।

७. जो कोई भी आगार उनके सम्पर्क में आते, वे ऋजु परिणामी भगवान् उन्हें छोड़कर ध्यान करते थे। पूछे जाने पर अभिभाषण नहीं करते, अपने पथ पर चलते और उसका अतिक्रमण नहीं करते।

८. णो सुगरमेयमेगेसिं, णाभिभासे य अभिवायमाणे ।
हयपुव्वो तत्थ दंडेहिं, लूसियपुव्वो अप्पपुण्णेहिं ।।

९. फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अइअच्च मुणी परक्कममाणे ।
आघाय-णट्ट-गीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ।।

१०. गढिए मिहुकहासु, समयंमि णायसुए विसोगे अदक्खू ।
एयाइं सो उरालाइं, गच्छइ णायपुत्ते असरणयाए ।।

११. अविसाहिए दुवे वासे, सीओदं अभोच्चा णिक्खंते ।
एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिण्णायदंसणे संते ।।

१२-१३. पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।
पणगाइं वीय-हरियाइं, तसकायं च सव्वसो णच्चा ।।
एयाइं संति पडिलेहे, चित्तमंताइं से अभिण्णाय ।
परिवज्जिया विहरित्था, इय संखाए से महावीरे ।।

१४. अदु थावरा तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए ।
अदु सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो वाला ।।

१५. भगवं च एवमण्णेसिं, सोवहिए हु लुप्पई बाले ।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडियाइक्खे पावगं भगवं ।।

१६. दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेलिसं णाणी ।
आयाण-सोयमइवाय-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ।।

१७. अइवाइयं अणाउट्टे, सयमण्णेसिं अकरणयाए ।
जस्सित्थिओ परिण्णाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खू ।।

८. भगवान् अभिवादन करने वालों से, अपुण्यवानों द्वारा डंडों से पीटे एवं नोंचे जाने पर भी अभिभाषण नहीं करते। यह सभी के लिए सुकर/सुलभ नहीं है।

९. मुनि/महावीर परुष दुःसह वचनों की अवगणना करके पराक्रम. करते हुए आख्यायिका, नाट्य, गीत दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध नहीं करते।

१०. मिथ-कथा/काम-कथा के समय ज्ञातसुत विशोक-द्रष्टा हुए। वे ज्ञातपुत्र इन उपसर्गों/उपद्रवों को स्मृति में न लाते हुए विचरण करते थे।

११. एकत्वभावी, अकषायी, अभिज्ञान-द्रष्टा एवं शान्त महावीर ने दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक शीतोदक/सचित्त जल का उपभोग न कर निष्क्रमण किया।

१२-१३. पृथ्वीकाय, अप्काय तेजरकाय, वायुकाय, पनक/फफूंदी, बीज, हरित और त्रसकाय को सर्वस्व जानकर ये सचित हैं, जीव हैं, ऐसा प्रतिलेख कर, जानकर, समझकर वे महावीर आरम्भ/हिंसा का वर्जन कर विहार करने लगे।

१४. स्थावर या त्रस-योनि में उत्पन्न, त्रस या स्थावर-योनि में उत्पन्न या सर्व-योनिक अस्तित्व वाले अज्ञानी जीव पृथक्-पृथक कर्म से कल्पित हैं।

१५. भगवान् ने माना कि सोपाधिक (परिगृही) अज्ञ ही क्लेश पाता है। भगवान् ने कर्म को सर्वशः जानकर उस पाप का प्रत्याख्यान किया।

१६. ज्ञानी और मेधावी भगवान् ने दोनों की समीक्षा कर और इन्द्रिय-स्रोत, हिंसा-स्रोत तथा योग (मानसिक वाचिक, कायिक प्रवृत्ति) को सभी प्रकार से जानकर अप्रतिपादित का क्रिया प्रतिपादन किया।

१७. अतिपातिक एवं अनाकुट्टिक/अहिंसक भगवान् हिंसा को स्वयं तथा दूसरों के लिए अकरणीय मानते थे। जिसके लिए यह ज्ञात है कि स्त्रियाँ समस्त कर्मों का आवाहन करने वाली है, वही द्रष्टा है।

१८. अहाकडं ण से सेवे, सव्वसो कम्मुणा य अदक्खू ।
जं किंचि पावगं भगवं, तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था ।।

१६. णो सेवई य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था ।
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखडिं असरणाए ।।

२०. मायण्णे असण-पाणस्स, णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे ।
अच्छिंपि णो पमज्जिया, णोवि य कंडूयए मुणी गायं ।।

२१. अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्ठओ उपेहाए ।
अप्पं बुइएऽपडिभाणी, पंथपेही चरे जयमाणे ।।

२२. सिसिरंसि अद्धपडिवण्णे, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे ।
पसारित्तु बाहुं परक्कमे, णो अवलंबियाणं कंधंमि ।।

२३. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेणं, भगवया एवं रीयंति ।।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२४. चरियासणाइं सेज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरे ।।

२५. आवेसण-सभा-पवासु, पणियसालासु एगया वासो ।
अदुवा पलियट्ठाणेसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ।।

१८. आधाकर्मी (उद्दिष्ट) आहार का भगवान् ने सेवन नहीं किया। वे सभी प्रकार से कर्म-द्रष्टा बने रहे। पाप के जो भी कारण थे, उनको न करते हुए भगवान् ने प्रासुक/निर्जीव आहार किया।

१९. वे परवस्त्र का सेवन नहीं करते थे. परपात्र में भोजन भी नहीं करते थे, अपमान का वर्जन कर अशरण-भाव से संखण्डि/भोजनशाला में जाते थे।

२०. भगवान् अशन और पान की मात्रा के ज्ञाता थे, रसों में अनुगृद्ध नहीं थे, अप्रतिज्ञ थे, आँख का भी प्रमार्जन नहीं करते थे, गात को खुजलाते भी नहीं थे।

२१. वे न तो तिरछे देखते थे और न पीछे देखते थे। वे बोलते नहीं थे, अप्रतिभाषी थे, पंथप्रेक्षी और यतनापूर्वक चलते थे।

२२. वे अनगार वस्त्र का विसर्जन कर चुके थे। शिशिर ऋतु में चलते समय बाहुओं को फैलाकर चलते थे। उन्हें कन्धों में समेट कर नहीं चलते।

२३. मतिमान माहन भगवान् महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक बार आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२४. [जम्बू ने सुधर्मा से निवेदन किया—] साधु-चर्या में आसन और शय्या/निवास-स्थान जो कुछ भी अभिहित है, उन शयनासनों को कहे, जिनका उनमहावीर ने सेवन किया।

२५. [महावीर ने] आवेशन/शून्यगृहों, सभाओं, प्याऊ और कभी पण्यशालाओं/दुकानों में वास किया अथवा कभी पलितस्थानों एवं पलाल-पुन्जों में वास किया।

२६. आगंतारे आरामागारे, गामे णगरेवि एगया वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो ।।

२७. एएहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी पत्तेरस वासे।
राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाइ ।।

२८. णिद्दं पि णो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए।
जग्गावई य अप्पाणं, ईसिं साई या सी अपडिण्णे ।।

२९. संबुज्झमाणे पुणरवि, आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ, बहिं चंकमिया मुहुत्तागं ।।

३०. सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगाय जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति ।।

३१. अदु कुचरा उवचरंति. गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य ।।

३२-३३. इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भि-गंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं ।।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अबहुवाई ।।

३४. स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु, एगचरा वि एगया राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ।।

३५. अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए स कसाइए झाइ ।।

२६. कभी आगन्तार/धर्मशाला, आरामागार/विश्रामगृह में तो कभी ग्राम या नगर में वास किया। कभी श्मशान या शून्यागार में तो कभी वृक्षमूल में वास किया।

२७. मुनि/भगवान् इन शयनों/वास-स्थलों में तेरह वर्ष पर्यन्त प्रसन्नमना रहे। रात-दिन यतनापूर्वक अप्रमत्त एवं समाहित भाव से ध्यान करते रहे।

२८. भगवान् प्रकाम/शरीर-सुख के लिए निद्रा भी नहीं लेते थे। उद्यत होकर अपने आपको जागृत करते थे। उनका किंचित् शयन भी अप्रतिज्ञ था।

२९. भगवान् जागृत होकर सम्बोधि-अवस्था में ध्यानस्थ होते थे। निद्राबाधित होने पर कभी-कभी रात्रि मे बाहर निकल कर मुहूर्त भर चंक्रमण करते थे।

३०. शयनों/वास-स्थानों में जो संसर्पक प्राणी थे या जो पक्षी रहते थे, वे भगवान् पर अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग करते।

३१. अथवा कुचर/दुराचारी, शक्तिहस्त/दरबान, ग्रामरक्षक लोग उपसर्ग करते थे। अथवा एकाकी स्त्रियों और पुरुषों के ग्राम्यधर्मी उपसर्ग सहने पड़ते थे।

३२-३३. भगवान् ने अनेक प्रकार के ऐहलौकिक या पारलौकिक रूपों, अनेक प्रकार की सुगन्धों, दुर्गन्धों शब्दों एवं विविध प्रकार के स्पर्शों को सदा समितिपूर्वक सहन किया। वे माहन-ज्ञानी अरति एवं रति दोनों अबहुवादी/मौनव्रती होकर विचरण करते रहे।

३४. कभी-कभी रात्रि में एकचरा/चोर या मनुष्यों द्वारा कुछ पूछे जाने पर भगवान् के अव्याहृत/मौन रहने के कारण वे कषायी/क्रोधी हो जाते थे। किन्तु भगवान् अप्रतिज्ञ होते हुए समाधि के प्रेक्षक बने रहे।

३५. यहाँ अन्दर कौन है ? [ऐसा पूछे जाने पर] मैं भिक्षु हूँ ऐसा उत्तर देवे। उनके क्रोधित होने पर भगवान् तूष्णीक/चुप रहते। यह उनका उत्तम धर्म है।

३६. जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते।
तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए णिवायमेसंति ॥

३७. संघाडिओ पविसिस्सामो, एहा य समादहमाणा।
पिहिया वा सक्खामो, अइदुक्खं हिमग-संफासा ॥

३८. तंसि भगवं अपडिण्णे, अहे वियडे अहियासए दविए।
णिक्खम्म एगया राओ, ठाइए भगवं समियाए ॥

३९. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेणं, भगवया एवं रीयंति ॥

—त्ति बेमि।

तीओ उद्देसो

४०. तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंस-मसगे य।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥

४१. अह दुच्चर-लाढमचारी, वज्जभूमिं च सुब्भ णि भूमिं च।
पंतं सेज्जं सेविंसु, आसणगाणि चेव पंताणि ॥

४२. लाढेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूहदेसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवइंसु ॥

३६. जिस शिशिर में कुछ लोग मारुत चलने पर काँपने लगते, उस हिमपात में कुछ अनगार निर्वात/हवा रहित स्थान की एषणा करते थे।

३७. कुछ संघाटी/उत्तरीय वस्त्र की कामना करते, कुछ ईंधन जलाते कुछ पिहित/आवरण (कम्वल आदि) चाहते, क्योंकि हिम-संस्पर्श अति दुःखकर होता है।

३८. किन्तु उस परिस्थिति में भी अप्रतिज्ञ भगवान अधोविकट/खुले स्थान में शीत सहन करते थे। वे संयमी भगवान् कभी-कभी रात्रि में वाहर निकलकर समिति पूर्वक स्थित रहते।

३९. मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक वार आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४०. भगवान् ने तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, तेजस्पर्श और दंशमशक के विविध प्रकार के स्पर्शों/दुःखों को सदा समितिपूर्वक सहन किया।

४१. इसके अनन्तर दुश्चर लाढ़ देश की वज्रभूमि और शुभ्रभूमि में विचरण किया। वहाँ उस प्रान्त के शयनों/वास-स्थानों और प्रान्त के आसनों का सेवन किया।

४२. लाढ देश में जनपद के लोगों ने उन पर वहुत उपसर्ग/उपद्रव किया और मारा। वहाँ उन्हें आहार रूक्षदेश्य/रूखा-सूखा मिलता था। वहाँ कुक्कर काट लेते और ऊपर आ पड़ते थे।

४३. अप्पे जणे णिवारेइ, लूसणए सुणए दसमाणे।
छुछुकारिंति आहंसु, समणं कुक्कुरा दसंतुत्ति ।।

४४. एलिक्खए जणा भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी।
लट्ठिं गहाय णालीयं, समणा तत्थ य विहरिंसु ।।

४५. एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं।
संलुंचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ।।

४६. णिहाय दंडं पाणेहिं, तं कायं वोसज्जमणगारे।
अह गामकंटए भगवं, ते अहियासए अभिसमेच्चा ।।

४७. णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो ।।

४८. उवसंकमंतमपडिण्णं, गामंतियं पि अप्पत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिंसु, एत्तो परं पलेहित्ति ।।

४९. हय-पुव्वो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंत-फलेण।
अदु लेलुणा कवालेण, 'हंता-हंता' बहवे कंदिंसु ।।

५०. मंसाणि छिण्णपुव्वाइं, उट्ठंभिया एगया कायं।
परीसहाइं लुंचिंसु, अहवा पंसुणा अवकिरिंसु ।।

५१. उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे ।।

५२. सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइं, अचेले भगवं रीइत्था ।।

४३. कुत्तों के काटने और भौंकने पर कुछ लोग उन्हें रोकते और कुछ लोग छू-छू करते, ताकि वे श्रमण को काट लें।

४४. जिस वज्रभूमि में बहुत से लोग रूक्षभोजी एवं कठोर स्वभावी थे, जहां लाठी और नालिका ग्रहण कर श्रमण विचरण करते थे।

४५. इस प्रकार वहाँ विहार करते हुए कुत्तों के द्वारा पीछा किया जाता। कुत्तों के द्वारा नोंच लिया जाता। उस लाढ़ देश में विहार करना कठिन था।

४६. अनगार प्राणियों के प्रति दण्ड/हिंसा का त्यागकर अपने शरीर को विसर्जन कर देते तथा ग्रामकण्टक/तीक्ष्ण वचन को समभावपूर्वक सहन करते थे।

४७. इसी प्रकार उस लाढ देश में कभी-कभी ग्राम भी नहीं मिलता था। जैसे संग्रामशीर्ष में हाथी पारग/पारगामी होता है, वैसे ही महावीर थे।

४८. उपसंक्रमण/विचरण करते हुए अप्रतिज्ञ भगवान् को ग्रामन्तिक होने पर या न होने पर भी वहाँ के लोग प्रतिनिष्क्रमण कर मारते और कहते—अन्यत्र पलायन करो।

४९. वहाँ दण्ड, मुष्टि, कुन्तफल/भाला, लोष्ट/मिट्टी के ढेले अथवा कपाल से प्रहार करते हुए 'हन्त ! हन्त !' चिल्लाते।

५०. कुछ लोग मांस काट लेते, थूक देते, परीषह करते, नोंच लेते अथवा पांसु/धुली से अवकीर्ण/ढक देते।

५१. कुछ लोग भगवान् को ऊँचा उठाकर नीचे पटक देते अथवा आसन से स्खलित कर देते। किन्तु भगवान् काया का विसर्जन (कायोत्सर्ग) किए हुए अप्रतिज्ञ-भावना से समर्पित होकर दुःख सहन करते थे।

५२. वे भगवान् महावीर संग्रामशीर्ष में संवृत शूरवीर की तरह थे। स्पर्शों/कष्टों का प्रतिसेवन करते हुए भगवान् अचल विचरण करते रहे।

५३. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेणं, भगवया एवं रीयंति ॥

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

५४. ओमोयरियं चाएइ, अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं ।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा, णो से साइज्जइ तेइच्छं ॥

५५. संसोहणं च वमणं च, गायब्भंगणं सिणाणं च ।
संबाहणं ण से कप्पे, दंत-पक्खालणं परिण्णाए ॥

५६. विरए गामधम्मेहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई ।
सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसी य ॥

५७. आयावई य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभित्तावे ।
अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयण-मंथु-कुम्मासेणं ॥

५८. एयाणि तिण्णि पडिसेवे, अट्ठ मासे य जावए भगवं ।
अपिइत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवा मासं पि ॥

५९. अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता ।
राओवरायं अपडिण्णे, अन्नगिलायमेगया भुंजे ॥

६०. छट्ठेणं एगया भुंजे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं ।
दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥

५३. मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक बार आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

५४. भगवान् रोग से अस्पृष्ट होने पर अवमौदर्य (ऊनोदर/अल्पाहार) करते थे। वह रोग से स्पृष्ट या अस्पृष्ट होने पर चिकित्सा की अभिलाषा नहीं करते थे।

५५. वे संशोधन/विरेचन, वमन, गात्र-अभ्यंगन/तैल-मर्दन, स्नान, संवाधन/वैय्यावृत्ति और दन्त-प्रक्षालन को त्याज्य जानकर नहीं करते थे।

५६. माहन/भगवान् ग्रामधर्म से विरत होकर अ-वहुवादी/मौनपूर्वक विचरण करते थे। कभी-कभी शिशिर में भगवान् छाया में ध्यान करते थे।

५७. ग्रीष्म में अभितापी होते हुए उत्कुट/ऊकड़ू बैठते और आताप लेते। अथवा रूक्ष ओदन, मंथु/सत्तु और कुल्माष/उड़द की कनी से जीवन-यापन करते थे।

५८. भगवान ने इन तीनों का आठ मास पर्यन्त सेवन किया। कभी-कभी भगवान ने अर्धमास अथवा एक मास तक पानी नहीं पिया।

५९. कभी दो मास से अधिक अथवा छह मास तक भी पानी नहीं पिया। वे रात-दिन अप्रतिज्ञ रहे। उन्होंने अन्न ग्लान/नीरस भोजन का आहार किया।

६०. उन्होंने कभी दो दिन, तीन दिन, चार दिन या पाँच दिन के बाद छठे दिन भोजन लिया। वे समाधि के प्रेक्षक अप्रतिज्ञ रहे।

६१. णच्चाणं से महावीरे, णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वा ण कारित्था, कीरंतं पि णाणुजाणित्था।।

६२. गामं पविसे णयरं वा, घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयत-जोगयाए सेवित्था।।

६३-६५. अदु वायसा दिगिंछत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठंते, सययं णिवइए य पेहाए।।
अदु माहणं च समणं वा, गामपिंडोलगं च अतिहिं वा।
सोवागं मूसियारिं वा, कुक्कुरं वावि विट्ठियं पुरओ।।
वित्तिच्छेयं वज्जंतो, तेसप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था।।

६६. अवि सूइयं व सुक्कं वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविए।।

६७. अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं।
उड्ढंअहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे।।

६८. अकसाई विगयगेहीय, सद्दरूवेसुऽमुच्छिए झाइ।
छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमायं सइं पि कुव्वित्था।।

६९. सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगव समिआसी।।

७०. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिण्णेण, भगवया एवं रीयंति।।

—त्ति बेमि।

६१. महावीर ने यह जानकर न स्वयं पाप किया, न अन्य से कराया और न ही पाप करते हुए का समर्थन किया।

६२. ग्राम या नगर में प्रवेश कर परार्थकृत/गृहस्थकृत आहार की एपणा करते थे। सुविशुद्ध की एपणा कर भगवान ने आयत-योग/संयत-योग का सेवन किया।

६३-६५. भूख से पीड़ित काक आदि रसाभिलापी प्राणी एपणा के लिए चेष्टा करते हैं। उनका सतत निपात देखकर माहन, श्रमण, ग्रामपिण्डोलक या अतिथि, श्वापाक/चाण्डाल, मूपिकारी/विल्ली या कुक्कुर को सामने स्थित देखकर वृत्तिच्छेद का वर्जन करते हुए, अप्रत्यय/अप्रीति का परिहार करते हुए भगवान मन्द पराक्रम करते और अहिंसापूर्वक आहार की गवेपणा करते थे।

६६. चाहे सूपिक/दूध-दही मिश्रित आहार हो या सूका, ठण्डा-वासी आहार, पुराने कुल्माप/उड़द, वुक्कस/सत्तू अथवा पुलाग आहार के उपलव्ध या अनुपलव्ध होने पर भी वे समभाविक रहे।

६७. वे महावीर उत्कृष्ट आसनों में स्थित और स्थिर ध्यान करते थे। ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग-ध्येय को देखते हुए समाधिस्थ एवं अप्रतिज्ञ रहते थे।

६८. वे अकपायी, विगतगृद्ध, शब्द एवं रूप में अमूर्छित होते हुए ध्यान करते थे। छद्मस्थ-दशा में पराक्रम करते हुए उन्होंने एक वार भी प्रमाद नहीं किया।

६९. स्वयं ही आत्म-शुद्धि के द्वारा आयतयोग को जानकर अभिनिर्वृत्त, अमायावी भगवान जीवनपर्यन्त समितिपूर्वक विचरण करते रहे।

७०. मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

□